मुहम्मद दारा शुकोह

एक सूफ़ी शहज़ादा

डॉ. मुहम्मद मुश्ताक़ तिजारवी

अनुवादः परवेज़ अहमद

ख़ुसरो फ़ाउण्डेशन
नई दिल्ली-11024

©सार्वाधिकार ख़ुसरो फ़ाउण्डेशन सुरक्षित हैं।

Mohammad Dara Shukoh
Aik Sufi Shehzada
By Dr. Mohammad Mushtak Tijarwi
Email: muftimushtak@gmail.com
Edition: 2026
ISBN: 978-81-996621-1-7

नाम किताब	:	मुहम्मद दारा शुकोह: एक सूफ़ी शहज़ादा
लेखक	:	डॉ. मुहम्मद मुश्ताक़ तिजारवी
अनुवाद	:	परवेज़ अहमद
प्रकाशन	:	2026
मूल्य	:	₹250
मुद्रक	:	अल्फ़ा ऑफ़सेट प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली
प्रकाशक	:	ख़ुसरो फ़ाउण्डेशन, डी-319, डिफ़ेन्स कॉलोनी, नई दिल्ली-110024

डॉ. ख़्वाजा मुहम्मद अब्दुस्समद इब्राहीम

के नाम

सूची

क्र.स.	विषय	पेज नं.
1.	प्रस्तावना	5
2.	भूमिका	7
3.	दारा शुकोह : एक परिचय	12
4.	दारा शुकोह की कृतियाँ	27
5.	सूफ़ीवाद और ब्रह्मज्ञान के मार्ग पर	47
6.	हज़रत मियां मीर क़ादरी के आस्ताने पर	59
7.	तसव्वुफ़ में निसाई जिहत दारा शुकोह और सूफ़ी महिलाएं	76
8.	दारा शुकोह की सूफ़ियाना शायरी	86
9.	दो दरियाओं का संगम अर्थात् सूफ़ीवाद और वेदांत में एकता के मार्ग	103
10.	मानव जीवन के रहस्यों को उजागर करना उपनिषदों का अनुवाद और योग की परंपरा	113
11.	बाबा लाल बैरागी के दरबार में	125
12.	दीबाचा-ए-मुरक़्क़ा: एक परिचय	134
13.	मुकालमा बा-फ़तेह अली क़लंदर (रह.)	142
14.	मुकालमा बा-फ़तेह अली क़लंदर (रह.) (हिंदी अनुवाद)	144
15.	ख़ुसरो फ़ाउण्डेशन: एक नई पहल	150

प्रस्तावना

ख़ुसरो फ़ाउण्डेशन के बहुमूल्य प्रकाशन "मुहम्मद दारा शुकोह: एक सूफ़ी शहज़ादा" का हिंदी अनुवाद आपके हाथों में है, जो इस बात की गवाही है कि हमारे पाठकों ने इस किताब को कितना पसंद किया है। किताब के अध्ययन से पता चलता है कि इस किताब के लेखक डॉ. मुहम्मद मुश्ताक़ तिजारवी ने जिस गहन अध्ययन और शोध के साथ इस किताब को संकलित किया है, वह पाठक को शुरू से अंत तक बांधे रखता है। यह किताब दारा शुकोह के जीवन, उनकी शैक्षणिक और बौद्धिक उपलब्धियों तथा उनके धार्मिक कार्यों पर विशेष प्रकाश डालती है।

दारा शुकोह की शांति की विचारधारा, क़ादरी वंश से उनका जुड़ाव, अपने बुज़ुर्गों के प्रति उनकी सच्ची श्रद्धा, भारतीय धर्मों, विशेष रूप से वेदों और उपनिषदों को समझने की उनकी कोशिश और अरबी एवं फ़ारसी के अलावा संस्कृत और भारतीय भाषाओं और तहज़ीबों को समझने और बढ़ावा देने के उनके प्रयास, ये सभी ऐसी कोशिशें हैं जिनकी आवश्यकता और महत्व आज दारा शुकोह के जीवनकाल की तुलना में कहीं अधिक है। हालाँकि दारा शुकोह के प्रयासों को उनकी ज़िंदगी में भी हुकूमत द्वारा नज़रअंदाज़ किया गया तथा उनके इंतिक़ाल (देहांत) के बाद भी उस समय के अधिकांश मुस्लिम शासकों एवं विद्वानों ने उनसे दूरी बनाए रखी, जिसके कारण दारा शुकोह की शख़्सियत एवं उनके कारनामों को वह दर्जा नहीं मिल सका जिसके वे हक़दार थे। हालांकि दारा शुकोह को दूसरा अमीर ख़ुसरो कहना अनुचित नहीं होगा क्योंकि अनेकता में एकता की अवधारणा को समझने, एकेश्वरवाद में विश्वास के आधार पर सामाजिक सद्भाव को बढ़ावा देने तथा एकेश्वरवाद के दर्शन और अन्य धर्मों में

मानवता के स्थान को समझने में दारा शुकोह एक मील का पत्थर हैं। उनकी किताब मजमउल-बहरैन एक ऐसी किताब है जिसके प्रकाश में इस्लाम और वेदों, मुसलमानों और हिंदुओं के बीच सद्भाव को बढ़ावा दिया जा सकता है।

यह किताब लेखक के उस प्रयास का नतीजा है जिसमें लेखक ने दारा शुकोह के शैक्षणिक और व्यावहारिक जीवन के विभिन्न पहलुओं को प्रस्तुत किया है।

किताब के लेखक डॉ. मुहम्मद मुश्ताक़ तिजारवी, जो एक इस्लामिक विद्वान हैं, जामिया मिल्लिया इस्लामिया में इस्लामिक अध्ययन विभाग में असिस्टैंट प्रोफ़ेसर और दारुल उलूम देवबंद से फ़ाज़िल हैं, सूफ़ियों की तरह संयम रखना उनकी मुख्य विशेषता है।

एक दर्जन से अधिक पुस्तकें और लेख प्रकाशित कर चुके डॉ. तिजारवी को मदरसा और समकालीन शिक्षा, सूफ़ीवाद, इतिहास और संस्कृति के विषयों पर महारत हासिल है।

हम ख़ुसरो फ़ाउण्डेशन की ओर से डॉ. मुहम्मद मुश्ताक़ तिजारवी के आभारी हैं तथा आशा करते हैं कि वे भविष्य में भी ऐसे विषयों पर कार्य करते रहेंगे।

विविधता में एकता की अवधारणा, सामाजिक सद्भाव को बढ़ावा देना, मानवता और भारतीयता का विकास, देश की अखंडता तथा इस्लाम के बारे में ग़लतफ़हमियों को दूर करना ख़ुसरो फ़ाउण्डेशन का उद्देश्य है। हमें विश्वास है कि यह किताब हमारे पाठकों के लिए इस विषय को समझने में सहायक होगी।

डॉ. हफ़ीज़ुर्रहमान

कन्वीनर

ख़ुसरो फ़ाउण्डेशन, नई दिल्ली

भूमिका

दारा शुकोह अपने वक़्त में मुग़ल वंश के सबसे प्रभावशाली और शक्तिशाली राजकुमार थे। सरकार और प्रशासन पर उनका गहरा प्रभाव था। राजसी दिनों के दौरान उनके पास ऐसा पद और प्रतिष्ठा थी जो कि देश के भाग्य का निर्धारण करती थीं। हालांकि बादशाह तो उनके पिता शाहजहाँ थे परन्तु असली शासन दारा शुकोह के हाथों में था, वही पूरे देश के मालिक थे। देश में जो कुछ भी वे चाहते थे वही होता था।

शाहजहां को भी सबसे ज़्यादा प्रेम और स्नेह दारा शुकोह से ही था। शाहजहां उनको ही अपना उत्तराधिकारी और अपने बाद हिंदुस्तान का बादशाह बनाना चाहते थे। इसीलिए उसने दारा शुकोह को अपना वली-ए-अहद (युवराज) नियुक्त किया था। लेकिन बाद में हालात उसके पक्ष में नहीं रहे और दारा शुकोह के लिए एक समय ऐसा आया जब भारत की भूमि, अपनी विशालता के बावजूद, उसके लिए छोटी पड़ गई। उनकी पूरी ताक़त बिखर गई, घर छूट गया, फ़ौज ख़त्म हो गई, उनकी असंख्य संपत्ति नष्ट हो गई और वे सिंध के रेगिस्तान में असहाय होकर भटकने को मजबूर हो गए, यहां तक कि उन्होंने देश से भागने का भी प्रयास किया। धीरे-धीरे स्थिति इतनी प्रतिकूल हो गई कि पूरे देश की नाकेबंदी कर दी गई, जिससे उनका बचकर निकलना असंभव हो गया। उसके विश्वस्त सहयोगियों ने भी उन्हें धोखा दिया और उन्हें गिरफ़्तार करवा दिया। गिरफ़्तारी के बाद उन्हें राजद्रोह के आरोप में मौत की सज़ा सुनाई गई और उनके छोटे भाई औरंगज़ेब आलमगीर के आदेश पर दिल्ली में उनको क़त्ल कर दिया गया।

यद्यपि दारा शुकोह अपने समय में एक शक्तिशाली राजकुमार और महान राजनीतिज्ञ थे, लेकिन वे अपने स्तर पर इतिहास के पन्नों पर कोई स्थायी प्रभाव नहीं छोड़ सके। भारत के विकास और प्रगति के लिए उन्होंने जो योजनाएं बनाई थीं, गंगा-जमुनी तहज़ीब को मज़बूत करके देश का विकास करने तथा उसे नई

ऊंचाइयों पर ले जाने का जो संकल्प उन्होंने लिया था, वह सब ख़त्म हो गया। जब सत्ता संभालने का समय आया तो वह उनके विरोधी गुट के पास चली गई, इसलिए उनका कोई भी सपना साकार नहीं हो सका।

सियासत और हुकूमत के अलावा भी दारा शुकोह का एक स्थान है और वह स्थान बहुत अनूठा है तथा उसका प्रभाव बहुत दूरगामी है। वह है ज्ञान के प्रति उनका प्रेम, लेखन और रचना के प्रति उनका आकर्षण तथा सूफ़ीवाद और भारतीय परंपराओं के प्रति उनका लगाव। दारा शुकोह की ज़िंदगी बाहरी तौर पर एक शहज़ादे और शासक की ज़िंदगी थी लेकिन उनके अंदर हमेशा एक विद्वान और सदाचारी व्यक्ति तथा एक सूफ़ी और तपस्वी था। भले ही वह राजनीतिक रूप से असफल रहे हों लेकिन एक बुद्धिजीवी, एक विद्वान और एक सूफ़ी के रूप में उनका जीवन और कार्य इतिहास के पन्नों में हमेशा के लिए दर्ज हो गए हैं। उन्होंने अपने जीवन में कई बेहतरीन पुस्तकें भी लिखीं, अनेक महत्वपूर्ण पुस्तकों का अनुवाद किया, विभिन्न समस्याओं को व्यापक रूप से सुलझाने और समझने का प्रयास किया और इन सबके साथ-साथ उन्होंने शायरी भी की। वे बहुत पढ़े-लिखे विद्वान और महान विचारक थे। उन्होंने जीवन की समस्याओं को गहराई से समझने की कोशिश की तथा कुछ समस्याओं के समाधान भी सुझाए। अगर वह कुछ और वक़्त जिए होते तो शायद ज़िंदगी की कुछ अन्य समस्याओं का स्थायी समाधान ढूँढ़ पाते।

यह सच है कि दारा शुकोह के लेखों में कुछ ग़लतियाँ हैं। ख़ास तौर पर पवित्र क़ुरान की कुछ आयतों की व्याख्या में उन्होंने स्पष्ट गलतियाँ की हैं। लेकिन इस मामले में दारा शुकोह से ज़्यादा वह समय और ज़माना ज़िम्मेदार है जिसमें वह रहते थे। उस ज़माने में ऐसे लोग मौजूद थे जिन्होंने उन आयतों की उसी तरह व्याख्या की जैसे दारा शुकोह ने की है बल्कि ऐसे लोग तो आज भी मौजूद हैं।

फिर भी यह सच है कि दारा शुकोह को इन बातों से पूरी तरह बरी नहीं किया जा सकता। हालांकि इन ग़लतियों की वजह से उनके पूरे काम को ख़राब नहीं मानना चाहिए। दारा शुकोह ने कई महत्वपूर्ण कार्य किए हैं जिनमें से कुछ का

धार्मिक महत्त्व भी है और कोई भी उनके सभी कार्यों के सांस्कृतिक महत्व से इंकार नहीं कर सकता। वह निश्चित रूप से एक महान लेखक और विद्वान थे। उन्होंने विभिन्न विधाओं विशेष रूप से सूफ़ीवाद का गहन अध्ययन किया था। फ़ारसी भाषा पर उनकी असाधारण पकड़ थी। शोध और लेखन में उनकी गहरी रुचि थी। सत्य की खोज के लिए उनमें प्रबल जुनून भी था। ऐसे लोग आम ज़िंदगी में भी नायाब होते हैं और राजघरानों में भी कम ही देखने को मिलते हैं।

दारा शुकोह का भाषाई कौशल भी बेजोड़ है और उनमें सूफ़ीवाद के मुद्दों को समझाने की भी बड़ी क्षमता है। उनका व्यक्तित्व इतना आकर्षक है कि विद्वानों का एक समूह हमेशा से ही उनसे मोहित रहा है। उनके जीवनकाल से ही विद्वान उनके व्यक्तित्व और उपलब्धियों पर शोध करते रहे हैं और यह सिलसिला आज भी जारी है। अंग्रेज़ी में उन पर कई शोध पुस्तकें मौजूद हैं। उदाहरण के लिए बिक्रमाजीत हसरत की किताब "Dara Shikuh: Life and Works", कालिका रंजन क़ानूनगो की विस्तृत शोध किताब "Dara Shukoh", और सुप्रिया गांधी द्वारा लिखित किताब "The Emperor Who Never Was: Dara Shukoh in Mughal India" अविक चंद जैन की किताब “Dara Shukoh: The Man Who Would be King” भी आजकल ख़ूब पढ़ी जा रही है। पॉल स्मिथ ने एक किताब लिखी है जिसका नाम है "The Book of Dara Shikoh: Life, Poems & Prose" इसके अलावा कई अन्य पुस्तकें भी हैं जिनके नाम हर अध्याय के अन्त में दिए गए हैं।

हालांकि, उर्दू में इस विषय पर गुणवत्तापूर्ण शोध की कमी है। उर्दू में कुछ किताबें उपलब्ध हैं लेकिन इनसे इस विषय की कमी पूरी नहीं होती है। इस पर अभी और काम करने की ज़रूरत है। जैसे महमूद अली की किताब "दारा-शुकोह" या सैयद मुहम्मद इस्लाम शाह की "दारा शुकोह के मज़हबी अक़ाइद" और डॉ. मुहम्मद सलीम की किताब "दारा शुकोह: अहवाल व आसार", साथ ही शकीलुर्रहमान की किताब "मुहम्मद दारा शुकोह" या क़ाज़ी अब्दुल सत्तार का नॉवेल आदि।

इस किताब ‘दारा शुकोह: एक सूफ़ी शहज़ादा’ के बारे में मैं यह दावा नहीं करता कि यह कोई असाधारण शोध है बल्कि यह दारा शुकोह को समझने का एक सरल प्रयास है। हालाँकि इस किताब के बारे में एक बात ज़रूर है कि इसमें लिखी गई हर बात सीधे दारा शुकोह की किताबों से ली गई है। इसमें दूसरे स्रोतों का उल्लेख केवल सहायक के रूप में किया गया है।

दूसरी बात यह है कि यह किताब दरअसल अलग-अलग लेखों का संग्रह है। इनमें से कुछ लेख तो पिछले कुछ वर्षों में विभिन्न सेमिनारों में प्रस्तुत किए गए हैं। इनके अलावा कुछ ऐसे लेख भी हैं जो अपने प्रारंभिक रूप में भाषण के रूप में लिखे गए थे और आम इंसान को संबोधित थे। इसलिए इन लेखों में आम ज़बान इस्तेमाल की गई है तथा लेख भी अपेक्षाकृत सरल और आसान हैं। बाद में इन सभी लेखों को संपादित करके इस संग्रह में शामिल किया गया है।

क्योंकि इस किताब में शामिल ये लेख इस किताब के अध्याय नहीं हैं इसलिए इस किताब में कुछ स्थानों पर पुनरावृत्ति है। ख़ास तौर पर लेखों के परिचय में दोहराव का भाव है। लेकिन यह एक ऐसा चरण है जिससे बचना मुमकिन नहीं है। फिर भी, इस संग्रह में उन्हें शामिल करते हुए, दोहराव को यथासंभव समाप्त करने का प्रयास किया गया है।

मैं सबसे पहले इस किताब को व्यवस्थित एवं सम्पादित करने के लिए अपने उस्ताद आली जनाब प्रो. अख़्तरुल वासे को धन्यवाद देना चाहूँगा, जिनके प्रोत्साहन से यह लेख किताब में शामिल हो पाए हैं। अन्यथा इन लेखों का प्रारूप बहुत समय से प्रतीक्षा कर रहा था, सही समय का इंतज़ार कर रहा था जिनके मार्गदर्शन में ही इन्हें किताब के रूप में संकलित किया गया।

साथ ही मैं जनाब संजीव सर्राफ़ और rekhta.com का भी शुक्रिया अदा करता हूँ। निःसंदेह इस संस्था ने आज उर्दू किताबों की जो ख़िदमत की है वह बेमिसाल है। rekhta.com से मैंने बहुत लाभ उठाया है। मैं इस संस्था और इससे जुड़े सभी लोगों का व्यक्तिगत रूप से शुक्रिया अदा करना चाहता हूँ। साथ

ही साथ राष्ट्रीय उर्दू भाषा विकास परिषद् (NCPUL) के निदेशक प्रोफ़ेसर शेख़ अक़ील अहमद का भी आभार व्यक्त करता हूँ।

बहरहाल, इस किताब के संयोजन और संपादन के लिए मैं जनाब अब्दुस्समद इब्राहीम का बहुत आभारी हूँ जिनकी दिलचस्पी से ही ये लेख लिखे जा सके और इस संग्रह के कई लेखों के संयोजन में भी उनकी सलाह का बहुत लाभ मिला है। मेरे भाई शब्बीर अहमद ख़ान मेवाती की सलाह और मशवरे मुझे हमेशा ही मिलते रहते हैं। इस किताब में भी उनका योगदान शामिल है। अल्लाह इन सभी हज़रात को जज़ा-ए-ख़ैर (सबसे बेहतर ईनाम) दे।

मैं इस किताब की कम्पोज़िंग और प्रूफ़ रीडिंग के लिए अपने दोस्त तनवीर अहमद का आभारी हूँ।

मैं अपनी बीवी शमशाद बेगम, बेटियों बुशरा ख़ानम, मुमताज़ जहां और सुंबल अफ़शां और बेटे वारिस सोहेल के प्रति उनके सहयोग के लिए बहुत आभारी हूं। मुमताज़ जहां ने ख़ास तौर से प्रूफ़-रीडिंग और कम्पोज़िंग में बहुत योगदान दिया। मैं उन सभी के लिए अल्लाह से दुआ करता हूं, वह सभी के लिए चीज़ें आसान बनाए और उन्हें दुनिया और आख़िरत में कामयाबी प्रदान करे।

22 जनवरी 2022

डॉ. मुहम्मद मुश्ताक तिजारवी

जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली

दारा शुकोह : एक परिचय

मुहम्मद दारा शुकोह मुग़ल वंश के शहज़ादों में एक अद्वितीय व्यक्तित्व थे। वे स्वयं एक महान विद्वान थे, बहुत पढ़े-लिखे थे, एक बहुत अच्छे शायर और एक उत्कृष्ट लेखक थे। भाषा और अभिव्यक्ति पर उनकी असाधारण पकड़ थी। साथ ही वे विद्वानों के बहुत बड़े प्रशंसक थे और उनका बहुत सम्मान करते थे। उन्होंने ख़ुद भी कई महत्वपूर्ण किताबें लिखीं और अन्य विद्वानों से भी किताबें लिखवाईं। वह विद्वानों और संतों को बहुत महत्व देते थे और दरवेशों और फ़क़ीरों की ख़िदमत में हाज़िरी देते थे। उन्होंने शायरों को भी ख़ूब संरक्षण दिया। उनके दरबार से कई अच्छे शायर जुड़े हुए थे।

इसके अलावा दारा शुकोह की सहिष्णुता भी उसका एक महत्वपूर्ण गुण था। वह सभी धर्मों के लोगों का सम्मान करते थे। वह धार्मिक सहिष्णुता और सह-अस्तित्व में विश्वास करते थे। इस्लाम के अलावा उन्होंने हिंदू, ईसाई और यहूदी धर्मों का भी अध्ययन किया। दरअसल, उनके व्यक्तित्व का एक पहलू यह भी है कि वर्तमान युग में वैश्विक स्तर पर हिंदू धर्म के अध्ययन की जो परंपरा है उसके संस्थापक दारा शुकोह ही हैं। उन्होंने उपनिषदों का फ़ारसी में अनुवाद किया था। इस अनुवाद के कारण ही यूरोप के लोग हिंदू धर्म के विचारों, सिद्धांतों और दर्शन से परिचित हुए। फिर जर्मनी और अन्य यूरोपीय देशों से विद्वान भारत आए और हिंदू धर्म के व्यापक अध्ययन की नींव रखी। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि दारा शुकोह आधुनिक युग में भारतीयता, भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के अध्ययन की परंपरा के संस्थापक थे। दारा शुकोह ने हिंदू धर्म और इस्लाम के बीच सामंजस्य के तरीक़े खोजने की कोशिश की और इसके लिए एक किताब मजमउल बहरैन लिखी।

विद्वानों ने हमेशा मुहम्मद दारा शुकोह की महानता को स्वीकार किया है। उनके बारे में बहुत से लोगों की कही गई बातों को दोहराने की आवश्यकता नहीं है। सिर्फ़ इमामुल-हिंद मौलाना अबुल कलाम आज़ाद का एक लेख प्रस्तुत किया जा रहा है। उन्होंने लिखा है:

> "शहज़ादा दारा शुकोह एक साम्राज्य का युवराज था। मुग़ल वंश में दारा शुकोह विचित्र स्वभाव और बुद्धि का व्यक्ति था और इस बात का हमेशा अफ़सोस रहना चाहिए कि भारतीय इतिहास की क़लम पर उसके शत्रु का क़ब्ज़ा रहा जिसके कारण सच्ची तस्वीर राजनीतिक चालबाज़ियों की धूल में छिप गई। शुरू से ही वे दरवेशों के मित्र थे और सूफ़ियाना दिल व दिमाग़ के व्यक्ति थे और वे हमेशा ग़रीबों और सूफ़ियों की संगति में रहते थे। उनके कुछ लेख जो इस कठिन परीक्षा से बच गए हैं, दिखाते हैं कि उनके लेख में गुणवत्ता की कमी नहीं थी। साहित्य के प्रति उनकी रुचि का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि वे लक्ष्य की तलाश के लिए सारे अंतर मिटा देते थे और जिस तरह मुस्लिम फ़क़ीरों के आगे सिर झुकाते थे वैसी ही आस्था हिंदू संतों के प्रति भी रखते थे।"(1)

मुहम्मद दारा शुकोह का जन्म मुग़ल शासन के चरम पर हुआ था, उनके पिता शाहजहाँ, दादा सुल्तान जहाँगीर और परदादा अकबर महान थे। इसलिए उनके पास पदवी और प्रतिष्ठा, इल्म व हिकमत के संसाधन और माल व दौलत के सभी प्रकार की प्रचुरता थी। दारा शुकोह की माँ वह महान महिला थीं जो आज भी प्रेम के अमर स्मारक ताजमहल के भीतर दफ़्न हैं और जिनके नाम पर ताजमहल बना है, जिसका वास्तविक नाम मुमताज़ महल का मक़बरा है। अत्यधिक उपयोग के कारण मुमताज़ महल ताजमहल बन गया।

दारा शुकोह का जन्म तीन बहनों के बाद हुआ था। यानी मलका मुमताज़ महल की लगातार तीन बेटियां पैदा हुईं। उनके बाद दारा शुकोह का जन्म हुआ था। यह सर्वविदित है कि दारा शुकोह के जन्म से पहले शाहजहाँ ने अजमेर जाकर मिन्नत भी मांगी थी। अजमेर दारा शुकोह का जन्मस्थान भी है। दारा शुकोह का

जन्म उम्मीदों और आरज़ुओं के माहौल में हुआ था। इसीलिए वह सबके चहेते बन गये। पूरा परिवार उनसे विशेष प्रेम करता था और सुल्तान जहांगीर ने भी उन पर अपना प्यार बरसाया था। अपने पिता और माता के साथ-साथ उन्हें अपनी बहनों से भी विशेष प्यार और स्नेह मिला।

दारा शुकोह का जन्म सोमवार 30 मार्च 1615 को अजमेर में हुआ था। दादा सुल्तान जहांगीर ने मुहम्मद दारा शुकोह नाम सुझाया। उनके जन्म पर एक बड़ा उत्सव मनाया गया। ग़रीबों और ज़रूरतमंदों में दान बांटा गया, ख़ुशी और हंसी का माहौल था और दरबारी शायरों ने उनके जन्म पर बड़े-बड़े क़सीदे लिखे। अजमेर में एक भव्य समारोह आयोजित किया गया। प्रसिद्ध शायर अबू तालिब कलीम ने जन्म तिथि निम्नलिखित मिस्रा (शेर की एक पंक्ति) से निकाली है:(2)

गुल-ए-अव्वलीन गुलिस्तान-ए-शाही

(शाही बाग़ का पहला फ़ूल)

(इस मिस्रा के अक्षरों से उर्दू वर्णमाला के क्रमानुसार संख्याएँ निकालने पर दारा शुकोह का जन्म वर्ष ज्ञात होता है।)

शाहजहाँनी काल के प्रसिद्ध इतिहासकार मुहम्मद सॉलेह कंबोह ने कई पृष्ठों में सुल्तान जहाँगीर द्वारा दारा शुकोह के जन्म का जश्न मनाने के लिए आयोजित समारोह का उल्लेख किया है।

दारा शुकोह का बचपन भी अन्य मुग़ल शहज़ादों की तरह ही बेफ़िक्री और विलासिता में बीता। जब वह शिक्षा प्राप्त करने की उम्र में पहुंचे तो उनके दादा ने अपने समय के दो सबसे प्रसिद्ध विद्वानों को नियुक्त किया। उनमें से एक का नाम अल्लामा अब्दुल लतीफ़ और दूसरे का नाम शेख़ मीरक है। ये दोनों लोग विभिन्न विषयों के विशेषज्ञ थे और अपने समय के अद्वितीय शिक्षक माने जाते थे। दारा शुकोह विशेष रूप से शेख़ मीरक से बहुत प्रभावित थे जिसका उल्लेख उन्होंने कई बार किया है।

पारंपरिक विषयों का अध्ययन करने के साथ-साथ समय के रीति-रिवाजों के अनुसार, दारा शुकोह ने सुलेख (कैलीग्राफ़ी) का भी अभ्यास किया और इसमें

बहुत महारत हासिल की। सुलेख में उनके शिक्षक उस समय के प्रसिद्ध सुलेखक (कैलीग्राफ़र) आक़ा अब्दुर्रशीद देलमी थे, जो नस्तालिक़ लिपि (एक प्रसिद्ध लिपि जिसमें उर्दू लिखी जाती है।) के संस्थापक मीर इमाद के भांजे थे। विभिन्न इतिहासकारों ने यह भी लिखा है कि दारा शुकोह को सुलेख के अलावा पेंटिंग का भी बहुत शौक था। हालांकि उनकी पेंटिंग के नमूने नहीं मिलते, परन्तु उनकी सुलेख कला के कई नमूने मौजूद हैं। लगभग बारह वस्लियाँ (मोटे और चिकने काग़ज़) उपलब्ध हैं। इन नमूनों के अंदर फूलों की शैली और वस्ली को सजाने के लिए उनकी पेंटिंग के नमूने हाशिये पर देखे जा सकते हैं। हालाँकि, उन्होंने अपने समय और उनसे पहले की पेंटिंग और सुलेख के उदाहरणों वाली एक किताब संकलित की थी।

अपनी पारंपरिक पढ़ाई पूरी करने के बाद दारा शुकोह साम्राज्य के कारोबार में शामिल हो गये। राजनीति और प्रशासन में सक्रियता के साथ-साथ ज्ञान और साहित्य के प्रति भी उनकी रुचि विकसित हुई। उन्होंने विभिन्न विषयों का व्यापक अध्ययन किया, विशेषकर सूफ़ीवाद और इस्लामी इतिहास का।

इसके बाद जब उन्होंने हिंदू धर्म का अध्ययन करना शुरू किया तो उन्हें एहसास हुआ कि संस्कृत सीखे बिना हिंदू धर्म को नहीं समझा जा सकता। इसलिए उन्होंने संस्कृत भी सीखी तथा बनारस के पंडितों और बाबा लाल बैरागी आदि विभिन्न योगियों से वेदांत और योग के प्रतीकों की शिक्षा ली तथा भारतीय विज्ञान और कलाओं में भी विशेषज्ञता हासिल की।

दारा शुकोह की मां रानी मुमताज़ महल चाहती थीं कि उनके बेटे का विवाह सुल्तान परवेज़ की बेटी नादिरा बेगम से हो लेकिन दारा शुकोह के विवाह योग्य आयु तक पहुंचने से पहले ही रानी मुमताज़ महल का इंतिक़ाल हो गया। इसलिए, उनकी इच्छा का सम्मान करते हुए शाहजहाँ ने उनकी शादी नादिरा बेगम से कर दी। यह शादी आगरा में बड़ी धूमधाम से हुई। मुहम्मद सॉलेह कंबोह ने इस शादी की भव्यता का विस्तार से वर्णन किया है। उनके अनुसार इस शादी पर 16 लाख रुपए ख़र्च हुए थे। 7 लाख 50 हज़ार रुपये के तो सिर्फ़ आभूषण थे। मुहम्मद

सॉलेह कंबोह ने इस शादी के सभी ख़र्चों और ख़ुशियों का बहुत विस्तार से वर्णन किया है।(3)

इस शादी के कुछ दृश्यों की तस्वीरें भी ली गई थीं। ये तस्वीरें आज भी उपलब्ध हैं और उनमें से कुछ से पता चलता है कि इस शादी में आतिशबाज़ी भी हुई थी। भारत में उत्सवों के अवसरों पर आतिशबाज़ी का प्रयोग पहले भी किया जाता रहा होगा, लेकिन इसका प्राचीन दस्तावेज़ी प्रमाण ये तस्वीरें हैं।

कुछ लोगों ने दारा शुकोह की प्रशासनिक क्षमताओं पर सवाल उठाए हैं, कुछ लोग उनके स्वभाव का भी हवाला देते हैं, लेकिन अगर पूरी स्थिति पर ग़ौर किया जाए तो पता चलेगा कि कुल मिलाकर वह एक अच्छे राजनेता थे। हालाँकि, शांतिप्रिय दारा शुकोह के पास सैन्य कौशल के मामले में कुछ ख़ास नहीं था। फ़ौजी महारत में उनके भाई उनसे कम नहीं बल्कि उनसे ज़्यादा कुशल थे। ख़ास तौर पर औरंगज़ेब की सैन्य शक्ति उस वक़्त भी सर्वोच्च थी।

शाहजहाँ दारा शुकोह को अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहते थे, लेकिन औरंगज़ेब की दिलचस्पी व्यापारिक साम्राज्य में थी और मुराद की भी। इसलिए शाहजहाँ को जल्द ही एहसास हो गया कि उसके बाद दारा शुकोह के लिए परिस्थितियाँ बहुत अनुकूल नहीं होंगी, इसलिए उसने अपने तीन साहसी बेटों को देश के तीन अलग-अलग हिस्सों में भेजा और दारा शुकोह को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया और उसके बाद उसके पद और ओहदे लगातार बढ़ाए गए। अंत में उन्हें ऐसे सम्मान भी मिले जो पूरे मुग़ल काल में एक ही समय में किसी एक व्यक्ति को नहीं मिल सकते थे। मुहम्मद सॉलेह के अनुसार शाहजहाँ ने उन्हें 60 ज़ात और 40,000 घुड़सवारों का पद दिया था और इसमें से 30,000 ऐसे सैनिक थे जिनके पास दो या तीन घोड़े थे। (4) मुग़ल काल में यह बहुत ही महान पद था। आज जब वे पद और ओहदे समाप्त हो गए हैं, उनका महत्व समाप्त हो गया है, तो इस पद का सही-सही आकलन करना कठिन है। लेकिन सच तो यह है कि ये पद और प्रतिष्ठा एक महान सुल्तान के बराबर थी।

अब्दुल हमीद लाहौरी भी शाहजहाँ के वक़्त के महान इतिहासकार हैं। उन्होंने भी दारा शुकोह के मनासिब (ओहदों) का वर्णन किया है, लेकिन उन्होंने लिखा है कि उनके पास बीस हज़ार व दस हज़ार सवार, दो घुड़सवार और तीन घुड़सवार के थे। (5) अब्दुल हमीद लाहौरी का इंतिक़ाल 1654 में हुआ। उन्होंने अपनी किताब उससे पहले लिखी होगी और दारा शुकोह को ये पद उनके बाद मिले होंगे, इसलिए उन्होंने पूरे पदों का उल्लेख नहीं किया। वैसे अब्दुल हमीद लाहौरी ने भी शाहजहाँ के दौर के रईसों में सबसे पहला नाम दारा शुकोह का लिया था। यानी तब तक दारा शुकोह को दरबार में सबसे ऊंचा दर्जा और प्रतिष्ठा हासिल हो चुकी थी।

शाहजहाँ ने दारा शुकोह को पहले इलाहाबाद, फिर पंजाब और मुल्तान और बाद में बिहार और गुजरात का सूबेदार यानी गवर्नर बनाया। दारा शुकोह ने सब कुछ अच्छे से संभाला लेकिन वह ख़ुद इस दौरान ज़्यादातर समय आगरा में रहते थे और अपने इलाक़ों का प्रबंधन ख़ुद ही करते थे।

दारा शुकोह का आगरा में लम्बे समय तक रहना उसके लिए नुक़सानदेह साबित हुआ। एक तो आगरा में रहने के कारण वह शासन-प्रशासन का उतना प्रत्यक्ष अनुभव हासिल नहीं कर पाये, जो एक बादशाह बनने के लिए ज़रूरी था। दूसरा नुक़सान यह हुआ कि दारा शुकोह के भाई उनके ख़िलाफ़ हो गए। शाहजहाँ का उनके प्रति असाधारण प्रेम छिपा नहीं था और उनके भाइयों को यह भी संदेह था कि बादशाह द्वारा उनके ख़िलाफ़ की गई कोई भी फटकार या कार्रवाई दारा शुकोह की शिकायत पर आधारित थी। इसलिए, सभी भाई उनसे नाराज़ हो गए और क्योंकि वह बादशाह के बहुत क़रीब थे, उनके भाई भी उससे ईर्ष्या करने लगे। साथ ही, मनासिब (ओहदों) में उनकी पदोन्नति से दोनों भाई और भी अधिक क्रोधित हो गये।

वैसे भी मुग़ल दरबार की राजनीति बहुत जटिल थी। मुग़ल वंश की महिलाओं ने हमेशा इस राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस दौरान शाहजहाँ की

दो बेटियों रोशन आरा बेगम और जहाँ आरा बेगम ने भी बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, लेकिन विस्तार में जाने का समय नहीं है।

इन सभी कठिनाइयों और बाधाओं से अप्रभावित दारा शुकोह भौतिक और आध्यात्मिक दोनों तरह से उन्नति करते रहे। स्पष्ट तौर पर उनके ओहदे और मनासिब में तरक़्क़ी होती रही और इसी दौरान उनको लाहौर के महान सूफ़ी संत हज़रत मियाँ मीर (रह.) से बड़ी अक़ीदत (श्रद्धा) हो गई। उनकी कृपा से दारा शुकोह को आंतरिक और आध्यात्मिक उन्नति भी हासिल होती रही। हज़रत मियां मीर (रह.) वही सूफ़ी हैं जिन्होंने अमृतसर में सिखों के पवित्र स्थल स्वर्ण मंदिर की आधारशिला रखी थी।(6)

दारा शुकोह को हज़रत मियां मीर (रह.) से अक़ीदत हो गई और वह उनसे शिक्षा लेने लगे। दारा शुकोह का लाहौर के प्रति झुकाव बढ़ गया, इसलिए उन्होंने लाहौर का ख़ूब विकास किया। उन्होंने वहां कई निर्माण कार्य करवाए, लाहौर के विकास के लिए कई बाज़ार बनवाए और एक शीश महल बनवाया, जिसकी तारीफ़ शायरों ने क़सीदों (प्रशंसात्मक कविता) में की है, लेकिन यह महल अब मौजूद नहीं है। गहरी अक़ीदत और हज़रत की जीवनी लिखने के लिए दारा शुकोह ख़ुद लंबे समय तक लाहौर में रहे।

लाहौर से तो दारा शुकोह हज़रत मियां मीर की वजह से मुरीद हो गये थे, लेकिन लाहौर के अलावा कश्मीर में भी उनकी गहरी दिलचस्पी थी। अपने दादा सुल्तान जहांगीर के शासनकाल के दौरान, वह कश्मीर आये और पहलगाम के पास झेलम नदी के तट पर एक बाग़ (उद्यान) बनवाया। जिसे इतिहास में बाग़-ए-दारा शुकोह के नाम से जाना जाता है। इस उद्यान के कुछ निशान अभी भी मौजूद हैं। इस बाग़ की सबसे ख़ास बात यह है कि शहज़ादा दारा शुकोह ने इसमें दो या तीन मंज़िला इमारत बनवाई थी, जिसमें उनका पुस्तकालय था। इस उद्यान और पुस्तकालय के अवशेष अभी भी मौजूद हैं।

हालांकि दारा शुकोह के व्यक्तित्व में विद्वत्ता, सूफ़ीवाद और नैतिकता का बोलबाला था, लेकिन ऐसा नहीं है कि वे राष्ट्रीय और राजनीतिक मामलों से दूर

रहे। वे ज्ञान और बुद्धि की दुनिया के साथ-साथ व्यापार और राजनीति में भी पूरी तरह से व्यस्त थे। हालांकि, सरकार और राजनीति में उनकी भागीदारी ज़्यादातर प्रशासनिक मामलों में ही थी। सैन्य-प्रकार की गतिविधियों में उनकी ज़्यादा दिलचस्पी नहीं थी। शाही दरबार में उनका शांतिप्रिय रवैया उनके लिए इम्तिहान बन गया और एक समय ऐसा आया जब ज़िंदगी ने उनसे बड़ा इम्तिहान लिया। दरअसल, क़ंधार की लड़ाई हारकर औरंगज़ेब वापस लौटा था। किसी ने दारा शुकोह को यह एहसास दिलाया कि अगर उसने क़ंधार पर विजय प्राप्त कर ली तो औरंगज़ेब की सैन्य शक्ति की चर्चा ख़त्म हो जाएगी। दारा शुकोह ने इस चुनौती को स्वीकार कर लिया और क़ंधार पर चढ़ाई करने के लिए तैयार हो गये।

जैसा कि ज्ञात है, शाहजहाँ के शासनकाल तक भारत की सीमा क़ंधार तक फैली हुई थी। ईरान के सफ़वी बादशाह शाह सफ़ी ने क़ंधार पर क़ब्ज़ा कर लिया था। शाहजहाँ ने औरंगज़ेब को सेना के साथ क़ंधार को सफ़वी शासकों से वापस लेने के लिए भेजा था। लेकिन औरंगज़ेब का अभियान असफल रहा। इसके बाद दारा शुकोह ने अपनी ओर से प्रस्ताव रखा कि वह क़ंधार को वापस ले लेगा। लेकिन शहज़ादा दारा शुकोह की ओर से यह एक बड़ी भूल थी और वास्तव में क़ंधार के युद्ध क्षेत्र में उनकी असफलता के कारण उनके बारे में आम धारणा यह बन गयी कि उनमें सैन्य क्षमता का अभाव है। क़ंधार के युद्ध में औरंगज़ेब और दारा शुकोह भी असफल रहे, लेकिन सबसे ज्यादा नुक़सान दारा शुकोह को हुआ।

शाहजहाँ ने सफ़वी शासकों से क़ंधार को वापस लेने के लिए एक विशाल सेना खड़ी की। दारा शुकोह को इस युद्ध का कमांडर बनाया गया। बहुत सारी नई तोपें बनवाईं, विशेषज्ञ तोपची भर्ती किये गये। युद्ध के पूर्वाभ्यास के लिए क़ंधार का कृत्रिम क़िला बनाया गया तथा उस पर आक्रमण कर युद्ध की रणनीति तैयार की गई। फिर व्यापक तैयारी के बाद, फ़रवरी 1653 में क़ंधार पर हमला किया गया। मुहम्मद सॉलेह कम्बोह, जिन्होंने इन सभी घटनाओं को देखा और अपनी किताब अमल-ए-सॉलेह में उनके बारे में लिखा, ने इस युद्ध की तैयारियों के बारे में बहुत विस्तार से लिखा है, जिसमें यह भी शामिल है कि कितने सैनिक एकत्र

किए गए, युद्ध कला के विशेषज्ञों को कैसे एक साथ लाया गया और क्या हथियार उपलब्ध कराए गए।(7)

क़ंधार में सफ़वियों की रक्षात्मक रेखा बहुत मज़बूत थी। हालांकि दारा शुकोह ने अपनी पूरी क्षमता लगा दी, फिर भी क़ंधार पर विजय नहीं मिली। न केवल क़ंधार पर विजय नहीं मिली, बल्कि इस युद्ध में मुग़ल सेना को जान-माल की भारी क्षति भी हुई और यह आक्रमण भी बुरी तरह विफल रहा। चूँकि इस सेना में अधिकतर बड़े सरदार मौजूद थे, इसलिए उन्होंने महसूस किया कि इस युद्ध में रणनीति की कमी थी, जिसके कारण मुग़ल सेना यह युद्ध हार गई। इसका सारा दोष दारा शुकोह पर आया और इसलिए दारा शुकोह की यह विफलता उस पर दूरगामी और हानिकारक प्रभाव डालने वाली साबित हुई।

क़ंधार की लड़ाई दारा शुकोह के लिए एक अवसर थी और इस लड़ाई में हार के बाद वह इस क्षेत्र पर ध्यान केंद्रित कर सकते थे और अपने लिए नए अवसर तलाश सकते थे। लेकिन, दारा शुकोह ने अपनी सैन्य क्षमताओं को बढ़ाने पर कोई ध्यान नहीं दिया और युद्ध हारने के बाद वह वापस आगरा में रहने लगे और ख़ुद को अध्ययन, वाद-विवाद और शोध में अधिक समर्पित कर दिया। जबकि उनके तीन भाई अपने-अपने क्षेत्रों में अपनी शक्ति बढ़ाते रहे। युद्ध के नये तरीक़ों का प्रयोग किया। उन्होंने अपनी सैन्य शक्ति बढ़ाई और केंद्र तथा केंद्रीय सेना दोनों में अपने समर्थक पैदा कर लिए। विशेषकर औरंगज़ेब इस मामले में अधिक सफल रहा।

शाहजहाँ अपनी आँखों से देख रहे थे कि दारा शुकोह, औरंगज़ेब, शुजा और मुराद सभी गद्दी के दावेदार थे और चारों के पास सेना और शक्ति थी। वह दिन दूर नहीं जब युद्ध के मैदान में उनकी सैन्य शक्ति की परीक्षा होगी। इसलिए, उन्होंने दरबारियों पर विशेष ध्यान दिया ताकि वे हर समय दारा शुकोह के प्रति वफ़ादार रहें और उन्हें वरिष्ठ दरबारियों का समर्थन प्राप्त हो सके।

1657 में शाहजहाँ की बीमारी की ख़बर सार्वजनिक हुई। सत्ता के लोभी बेटों ने इस बीमारी को जानलेवा बीमारी समझकर राजधानी की ओर कूच कर दिया।

बल्कि उन्हें यक़ीन हो गया था कि शाहजहां की अब मौत हो चुकी है, इसलिए उन्होंने औपचारिक रूप से अपना राजतिलक किया और राजसिंहासन पर बैठने की उम्मीद में आगरा के लिए निकल पड़े। सबसे पहले शुजा को औपचारिक रूप से ताज पहनाया गया और वह आगरा के लिए रवाना हुआ। लेकिन शाहजहाँ के आदेश पर दारा शुकोह का पुत्र सुलेमान शुकोह लड़ने आया। बनारस के निकट चाचा-भतीजे की सेनाओं के बीच युद्ध हुआ और राजकुमार शुजा को क़रारी हार का सामना करना पड़ा।

कामयाबी के नशे में चूर सुलेमान शुकोह ने औरंगज़ेब को भी शुजा की तरह समझा और बिना किसी तैयारी के औरंगज़ेब की ओर बढ़ गया। दोनों के बीच मुक़ाबला उज्जैन के पास धरमत का मैदान में हुआ। इस युद्ध में सुलेमान शुकोह की हार हुई। इसके बाद औरंगज़ेब और मुराद की संयुक्त सेना आगरा की ओर बढ़ी।

दारा शुकोह, जो युवराज भी थे, आगरा छोड़कर लगभग 8 किलोमीटर दूर सामूगढ़ में बस गया। दोनों सेनाओं के बीच इसी स्थान पर लड़ाई हुई थी। हालांकि दारा शुकोह की सेना बड़ी थी और उसके पास अधिक संसाधन थे, वहीं दूसरी ओर औरंगज़ेब और मुराद की सैन्य शक्ति कम थी, फिर भी औरंगज़ेब का सैन्य कौशल काम आया और उसने दारा शुकोह की सेना को पराजित कर दिया।

बहरहाल, युद्ध का परिणाम यह हुआ कि 29 मई 1658 को इस युद्ध में दारा शुकोह की हार हुई। उनकी सेना बिखर गयी और वह बड़ी अव्यवस्था में आगरा लौट आये। दारा शुकोह ने एक और ग़लती की, आगरा में रहकर लड़ने के बजाय वह अपने परिवार को लेकर गुप्त रूप से पंजाब चले गये। सैनिक अपना ख़ज़ाना और अपने परिवार भी अपने साथ ले गये। औरंगज़ेब की सेना जीत की ख़ुशी के साथ आगरा पहुंची और वहां डेरा डाला।

शाहजहाँ ने औरंगज़ेब को फटकार लगाई और उसे अपने दरबार में पेश होने का आदेश दिया, लेकिन औरंगज़ेब को भी पता था और कुछ दरबारियों ने भी औरंगज़ेब को यह संकेत दे दिया था कि अगर औरंगज़ेब ने क़िले में क़दम रखा तो

उसको मार दिया जाएगा। इसलिए लंबी बातचीत के बाद औरंगज़ेब इस शर्त पर क़िले में पेश होने के लिए तैयार हो गया कि क़िले की सभी मीनारों पर औरंगज़ेब के सैनिक तैनात रहेंगे। शाहजहाँ ने इसकी अनुमति दे दी। इस प्रकार, औरंगज़ेब ने आगरा क़िले पर क़ब्ज़ा कर लिया और क़िले में प्रवेश करके शाहजहाँ को दरबार-ए-ख़ास के भीतर क़ैद कर लिया और इस तरह औरंगज़ेब का पूरे भारत पर शासन बड़ी आसानी से स्थापित हो गया।

शाहजहाँ के समय के प्रसिद्ध इतिहासकार मुहम्मद सॉलेह कम्बोह ने दारा शुकोह के युद्ध और उसके लाहौर जाने, शाहजहाँ द्वारा औरंगज़ेब को फटकार लगाने, उनके पत्राचार, औरंगज़ेब के बहाने और माफ़ी मांगने तथा युद्ध के लिए दारा शुकोह को दोषी ठहराने के प्रयासों के बारे में विस्तार से लिखा है। उन्होंने इस संबंध में कई पत्रों का हवाला भी दिया है और शाहजहाँ की क़िले में नज़रबंदी, दारा शुकोह का व्यथित जीवन और उसकी हत्या तक की परिस्थितियों के बारे में विस्तार से लिखा है। उनके बयानों की ख़ास बात यह है कि उनमें तारीख़ और कभी-कभी समय का भी ध्यान रखा गया है। उदाहरण के लिए, दारा शुकोह के बारे में लिखा गया है कि शहज़ादा दारा शुकोह रात में आगरा पहुंचे और आगरा में केवल एक रात रुके, जिसके बाद वे तुरंत लाहौर चले गए।(8)

आगरा छोड़ने के बाद दारा शुकोह पहले लाहौर में रहे। चूँकि वह अकसर लाहौर आते-जाते रहते थे और लाहौर में उनके अनुयायी थे, इसलिए उन्होंने लाहौर का बहुत विकास किया था, इसलिए उनको उम्मीद थी कि लाहौर में उनको जनता का समर्थन मिलेगा। उन्होंने वहाँ अपनी सेना को फिर से संगठित करनी शुरू कर दी थी, लेकिन औरंगज़ेब ने भी पंजाब का रुख़ कर लिया। यह संभव है कि लाहौर में दारा शुकोह को वह सुरक्षा न मिली हो जिसकी उन्हें उम्मीद थी। इसलिए वे वहां से मुल्तान के लिए रवाना हो गये। वहाँ रहकर अपनी सेना को फिर से संगठित करने की कोशिश की। चूँकि उन्हें यहाँ रहकर सेना को संगठित करने में काफ़ी मुश्किलों का सामना करना पड़ रहा था, इसलिए दारा शुकोह क़ंधार या ईरान

जाना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने सफ़वी बादशाह को एक पत्र भी लिखा था, लेकिन दारा शुकोह की सेना इसके लिए तैयार नहीं थी।

दारा शुकोह की बीवी नादिरा बेगम ने भी क़ंधार जाने से इनकार कर दिया। औरंगज़ेब की सेना लगातार उसका पीछा कर रही थी, जिससे दारा शुकोह को भक्कर की ओर मुड़ने के लिए मजबूर होना पड़ा। दारा शुकोह ने सिंध के कई शहरों की यात्रा की। आगरा के आलीशान महलों में पले-बढ़े राजकुमार को सिंध के रेगिस्तान में धूल फांकने के लिए मजबूर होना पड़ा। नई सेना की भर्ती करना मुश्किल होता जा रहा था और पुरानी सेना भी धीरे-धीरे निराश होकर उनका साथ छोड़ने लगी।

इस संकटपूर्ण स्थिति में दारा शुकोह सिंध से राजस्थान होते हुए गुजरात चले गए। यह रास्ता बहुत कठिन था। पानी की भी कमी थी। यात्रा की कठिनाइयों और चिंताओं के बीच एक बड़ा सदमा नादिरा बेगम की मौत से लगा। यह सर्वविदित है कि नादिरा बेगम प्यास से मर गईं। यह एक बड़ी सीख है कि जिस महिला को चार सौ साल पहले अपनी शादी में साढ़े सात लाख के गहने मिले थे, कुछ साल बाद वही महान महिला पानी की कुछ बूंदों के लिए तरसती हुई इस दुनिया से चली गईं। अल्लाह सब पर रहम करे।

दारा शुकोह को अपनी बीवी नादिरा बेगम से बहुत प्यार था। दारा शुकोह ने शादी भी केवल एक ही की थी। नादिरा बेगम के इंतिक़ाल का सदमा उनके लिए बहुत बड़ा आघात साबित हुआ। वह लंबे समय तक इस पीड़ा से जूझते रहे, कई महीने ऐसे ही भटकते रहे। बाद में वह अहमदनगर चले गये और वहाँ एक महीना बिताकर एक बड़ी सेना बनाने की कोशिश की।

दारा शुकोह के पास बहुत बड़ा ख़ज़ाना था और शाहजहां के बेटे के तौर पर उनकी बड़ी ख्याति भी थी, इसलिए उन्होंने अहमदनगर में एक बड़ी सेना इकट्ठी की और अजमेर में होते हुए आगरा पर फिर से हमला करने की योजना बनाई। इसी इरादे से वह अपनी सेना लेकर निकल पड़े। लेकिन औरंगज़ेब के जासूस उसका पीछा कर रहे थे। जैसे ही उनकी सेना अजमेर की सरहद पर पहुंची,

औरंगज़ेब की सेनाओं से उसका सामना हुआ और इस लड़ाई में दारा शुकोह को एक बार फिर हार का सामना करना पड़ा।

दारा शुकोह वहां से भागकर सिंध वापस चले गये, इस बार उनका इरादा क़ंधार की ओर कूच करने का था। लेकिन अब उनके पास न तो बड़ी सेना थी और न ही कोई ख़ज़ाना बचा था। इसलिए यह यात्रा और भी कठिन थी और इस दौरान औरंगज़ेब को भी उनकी गतिविधियों की जानकारी हो गई थी, इसलिए उसने बादशाह जयसिंह के माध्यम से भारत से बाहर जाने के सभी मार्गों को बंद करवा दिये थे। एक अफ़ग़ान सरदार, मलिक जीवन, जो दारा शुकोह का हितैषी था, से दारा शुकोह ने भारतीय सीमा पार करने और इस घेराबंदी से बच निकलने में मदद मांगी। उसने मदद भी की, लेकिन बाद में उसी ने ग़द्दारी की और दारा शुकोह को गिरफ़्तार करवा दिया।

दारा शुकोह को क़ैद करने के बाद शाहजहाँ के दौर के प्रसिद्ध सेनापति ख़लीलुल्लाह ख़ान उनको दिल्ली ले आये। दारा शुकोह लोगों के बीच बहुत लोकप्रिय थे, इसका प्रमाण यह है कि जब उन्हें क़ैद करके दिल्ली लाया गया तो दिल्ली की जनता उनके समर्थन में सड़कों पर उतर आई और एक विशाल जुलूस निकाला गया।

हालाँकि दिल्ली की जनता ने दारा शुकोह के समर्थन में यह जुलूस निकाला था, लेकिन इसका असर दारा शुकोह के पक्ष में अच्छा नहीं हुआ। इससे औरंगज़ेब को डर था कि कहीं दारा शुकोह के समर्थन में जन विद्रोह न भड़क जाए। इसलिए अगले ही दिन, 30 अगस्त, 1659 को दारा शुकोह की हत्या कर दी गई और उसके शव को हुमायूं के मक़बरे में उन्हीं कपड़ों में दफ़ना दिया गया, जो उसने शहादत के समय पहने हुए थे।

मुहम्मद सॉलेह कम्बोह ने राजकुमार मुहम्मद दारा शुकोह की गिरफ़्तारी और शहादत की घटनाओं के बारे में बहुत ही भावुक तरीक़े से लिखा है, और उनके दफ़्न का विवरण दिया है। उन्होंने ख़ुद लिखा है कि दारा शुकोह को उन्हीं कपड़ों में दफ़नाया गया जो उन्होंने शहादत के समय पहने हुए थे। लेकिन उन्होंने उस

कहानी का ज़िक्र नहीं किया है जो लोगों ने मशहूर कर दी है कि दारा शुकोह का सिर काटकर शाहजहां के पास भेज दिया गया था।(9)

कई लोग इस पूरी कहानी को एकतरफ़ा बताते हुए इसे औरंगज़ेब को निर्दयी और अत्याचारी तथा दारा शुकोह के पीड़ित होने की कहानी बताते हैं। लेकिन फिर भी यह एक तथ्य है कि मुग़ल ख़ानदान में शहज़ादगी का उदय हमेशा तलवार की छत्र-छाया में हुआ है और नए बादशाह की ताज़पोशी (राज्याभिषेक) के समय कुछ शहज़ादों की बलि भी चढ़ाई जाती रही है। औरंगज़ेब की ताज़पोशी दारा शुकोह और सुलेमान शुकोह के ख़ून से सनी हुई है और अगर दारा शुकोह की ताज़पोशी होती तो वह निश्चित रूप से औरंगज़ेब के ख़ून की क़ीमत पर होती।

बेशक, मुग़ल दरबार की सियासत अपनी जगह थी, लेकिन यह निश्चित है कि दारा शुकोह का ज्ञान और उनकी शालीनता और उत्कृष्टता ऐसी थी कि अगर वह जीवित होते, तो कई मायनों में देश के लिए बड़े अच्छे होते।

दारा शुकोह की दर्दनाक मौत ने मुग़ल इतिहास में एक नए दौर का दरवाज़ा बंद कर दिया। दारा शुकोह बहुत ही उदार, दानशील, समर्पित और सूफ़ी विचारधारा वाले व्यक्ति थे। उनको सीखने और सिखाने में रूचि थी, किताबों के शौक़ीन थे, और विद्वानों और सूफ़ियों की संगति में रहना पसंद करते थे। वह ख़ुद भी एक महान सूफ़ी थे।

संदर्भ:

1. मौलाना अबुल कलाम आज़ाद: हयात-ए-सरमद, लखनऊ, पेज 18
2. मुहम्मद सॉलेह कम्बोह: अमल-ए-सॉलेह अल-मौसूम बी शाहजहाँनामा, डॉ. गुलाम यज़दानी द्वारा संपादित, डॉ. वहीद कुरैशी द्वारा संपादित और संशोधित, मजलिस-ए-तरक़्क़ी-ए-अदब लाहौर, दूसरा संस्करण, 1968, खंड एक, पृ. 76-79
3. As above पृ. 435-445
4. As above, खंड 3, पेज 346
5. अब्दुल हमीद लाहौरी: पादशाहनामा, मेजर डब्ल्यू. एन. लीज़ की देखरेख में, कलकत्ता, 1868, खंड II, पेज 717
6. दारा शुकोह ने हज़रत मियां मीर क़ादरी पर एक स्थायी किताब सकीनतुल औलिया लिखी है। इस किताब में इसका विस्तृत परिचय दिया गया है।
7. अमल-ए-सॉलेह, खंड 3, पेज 117-121
8. As above, खंड. 3 पृ. 220-262
9. As above, खंड. 3 पृ. 264

दारा शुकोह की कृतियाँ

दारा शुकोह के जीवन का सबसे बड़ा सत्य और सबसे बड़ी वास्तविकता उनका ज्ञान और उनकी महारत है। दारा शुकोह की राजनीतिक और सैन्य कुशलता चाहे जो भी हो, और लोग उनके बारे में चाहे जो भी टिप्पणी करें, उनकी विद्वत्तापूर्ण क्षमता, भाषा पर उनका असाधारण अधिकार, सूफ़ीवाद और नैतिकता का उनका व्यापक अध्ययन, तथा हिंदू धर्म और वेदांत दर्शन का उनका विशाल ज्ञान, ये सभी उनके गुण हैं जिन्हें सभी स्वीकार करते हैं। इन गुणों के कारण ही वह अपने युग में भी एक अद्वितीय व्यक्तित्व बन गये और आज, कई सदियाँ बीत जाने के बावजूद भी उनकी महानता बरक़रार है। दारा शुकोह के व्यक्तित्व का यह शैक्षणिक पहलू उन्हें ज्ञान और बुद्धि की दुनिया में जीवित और अमर बनाए रखेगा।

दारा शुकोह को सूफ़ी परंपरा की भी गहरी समझ थी और उन्होंने हिंदू धर्म की वेदांत परंपरा का भी गहन अध्ययन किया था। इसके साथ ही उन्हें फ़ारसी भाषा में भी असाधारण दक्षता हासिल थी। फ़ारसी में उनकी क़लम इतनी धाराप्रवाह, सहज और सुंदर थी कि उन्होंने जो लिखा उसे स्वीकार कर लिया गया। आज भी उनकी रचनाएँ बड़ी रुचि से पढ़ी जाती हैं। आधुनिक युग में भी हिंदू धर्म के वैश्विक अध्ययन का एक कारण यह है कि उन्होंने फ़ारसी में उपनिषदों का अनुवाद बेहतरीन तरीक़े से किया। इस अनुवाद को यूरोप में काफ़ी लोकप्रियता मिली और इससे प्रभावित होकर यूरोपीय लोगों ने संस्कृत और हिंदू धर्म का अध्ययन करना शुरू कर दिया।

दारा शुकोह अपने समय के एक प्रतिष्ठित विद्वान और बुद्धिजीवी थे। शाही परिवारों में ऐसे विद्वान और बुद्धिजीवी आम तौर पर दुर्लभ होते हैं। मुग़ल वंश में

भी ज्ञान के मामले में बाबर के बाद दारा शुकोह का स्थान सबसे ऊंचा है। नि:संदेह वह एक महान विद्वान और एक बेहतरीन लेखक थे।

दारा शुकोह न केवल एक अच्छे लेखक थे बल्कि एक बहुत अच्छे शोधकर्ता भी थे। उनकी शोध पद्धति काफ़ी हद तक मानक थी। उनकी शोध पद्धति आज की शोध पद्धति से कम नहीं कही जा सकती। ख़ासकर सकीनतुल औलिया में उनकी शोध पद्धति वर्तमान युग के किसी भी शोध के मानक से कम नहीं है।

दारा शुकोह ने विभिन्न विषयों पर कई पुस्तकें लिखीं और कुछ का अनुवाद भी किया। उनका रचनात्मक जीवन किसी शहज़ादे का नहीं, बल्कि एक विद्वान का जीवन लगता है। दारा शुकोह के लेखन की एक विशेषता यह थी कि उन्होंने अपनी सर्वोत्तम क्षमता के अनुसार व्यापक शोध किया था। उनकी मौजूदा कृतियों की संख्या एक दर्जन से अधिक है।

लेकिन यह यक़ीन के साथ कहा जा सकता है कि उन्होंने कई अन्य विद्वत्तापूर्ण कार्य भी किए थे जो उनके अचानक इंतिक़ाल के कारण अधूरे रह गए और बाद में वह परंपरा ही समाप्त हो गई, इसलिए उनके कई लेख भी बरबाद हो गए।

दारा शुकोह के साहित्यिक जीवन और उनके विद्वत्तापूर्ण प्रयासों को आमतौर पर दो भागों या दो अवधियों में विभाजित किया जाता है। उनके लेखन का एक काल सफ़ीनतुल-औलिया की रचना से लेकर रिसाला हक़नामा की रचना तक का है और दूसरा काल रिसाला हक़नामा की रचना से लेकर यानी 1647/1056 से लेकर उनके जीवन के अंत तक का है। कुछ लोगों ने उनके साहित्यिक काल को भी तीन भागों या तीन अवधियों में विभाजित किया है। हालाँकि, उनके कार्यों को तीन अवधियों में विभाजित करने की परंपरा बहुत प्रामाणिक नहीं है। मैंने इसी किताब में एक जगह इसका उल्लेख किया है, इसलिए यहाँ इस पहलू पर विस्तार से चर्चा करने और इसका विवरण देने की आवश्यकता नहीं है।

दारा शुकोह की शैक्षणिक और साहित्यिक यात्रा के प्रथम काल में उनके स्वभाव और प्रवृत्ति पर सूफ़ीवाद और नैतिकता का प्रभुत्व था। इस अवधि के दौरान उनके सभी प्रयास मुस्लिम विद्वानों और सूफ़ियों तक ही सीमित थे। इस

अवधि के दौरान उन्होंने सूफ़ी पुस्तकों का गहन अध्ययन किया और व्यावहारिक रूप से एक सूफ़ी का जीवन जिया। इस संदर्भ में वे क़ादरी संप्रदाय के औपचारिक शिष्य बन गए और क़ादरी सूफ़ी संप्रदाय के प्रति उनकी इतनी भक्ति हो गई कि उन्होंने शायरी में अपना छद्म नाम क़ादरी अपना लिया। इस अवधि के दौरान वे अधिकतर मुस्लिम सूफ़ियों की संगति में रहे और उनकी सेवा करके अपनी समस्याओं को सुलझाने का प्रयास किया।

दारा शुकोह के लेखन का दूसरा काल 1647/1056 में शुरू होता है। इस अवधि के दौरान उन्होंने अपने विचार और आध्यात्मिक खोज का दायरा और बढ़ाया तथा इसमें सूफ़ीवाद के साथ-साथ वेदांत को भी शामिल किया। बल्कि वेदांत के अलावा ईसाई धर्म और यहूदी धर्म में भी आध्यात्मिक मूल्यों की खोज करने लगे। उन्होंने ख़ुद लिखा है कि क़ुरान का अध्ययन करने के बाद उन्होंने तौरैत, इंजील (बाइबिल) और ज़बूर का भी अध्ययन किया। लेकिन उन्हें यहूदी और ईसाई धर्म का गहन अध्ययन करने का शायद अधिक अवसर नहीं मिला। हालाँकि, उन्होंने हिंदू धर्म का गहन अध्ययन किया।

दारा शुकोह ने किसी अन्य कारण से धर्मों का अध्ययन शुरू किया था, लेकिन बाद में उनमें विभिन्न धर्मों के बीच तुलना करने और एक प्रकार का सामंजस्य बनाने की प्रवृत्ति विकसित हो गयी। उन्होंने ईसाई धर्म का अध्ययन किया था और यह भी ज्ञात है कि वह दो बार चर्च गये थे, लेकिन स्पष्टतः वह ईसाई परंपरा से बहुत प्रभावित नहीं थे क्योंकि उन्होंने अपने लेख में कहीं भी इसका उल्लेख नहीं किया है।

दारा शुकोह के कुछ ईसाई सेवकों, जैसे कि एक इटैलियन सेवक, निकोला मन्नुची और उस समय के कुछ प्रचारकों ने यह ग़लत धारणा बनाने की कोशिश की कि दारा शुकोह ने ईसाई धर्म अपना लिया था। प्रसिद्ध इतिहासकार पर्सी ब्राउन ने भी दोहराया है कि उन्होंने ईसाई धर्म अपना लिया था। वैसे तो दारा शुकोह की कई रचनाएँ हैं लेकिन उन्होंने ईसाई धर्म की प्रशंसा में एक भी शब्द नहीं लिखा है, उसे स्वीकार करना तो दूर की बात है। हालाँकि, वे हिंदू धर्म में

वेदांत परंपरा से प्रभावित थे और उन्होंने इस परंपरा का अध्ययन इस दृष्टिकोण से किया कि इस्लाम और वेदांत की परंपराओं में क्या समानताएँ हैं। इसलिए इसके अध्ययन के साथ-साथ उन्होंने सूफ़ीवाद की परंपरा के साथ उनकी तुलना भी करनी शुरू कर दी थी।

जैसा कि ऊपर बताया गया है, दारा शुकोह की रचनाओं का एक बड़ा हिस्सा खो गया है। केवल कुछ पुस्तकें ही उपलब्ध हैं। नीचे दारा शुकोह की कृतियों की सूची उनके साहित्यिक रुचि के क्रम में दी गई है। अर्थात्, उनके प्रथम और द्वितीय काल के कार्यों की सूची क्रमशः इस प्रकार है:

1. सफ़ीनतुल औलिया
2. सकीनतुल औलिया
3. रिसाला हक़नुमा
4. हसनातुल आरिफ़ीन
5. मजमउल बहरैन
6. सिर्रे अकबर
7. मुकालमा बाबा लाल बैरागी
8. मुकालमा बा-फ़तेह अली क़लंदर
9. दीबाचा-ए-मुरक़्क़ा
10 दीवान-ए-अशआर
11 तरीक़तुल हक़ीक़त
12 रिसालतुल मआरिफ़
13 बयाज़-ए-दारा शुकोह
14 मकातीब
15 मसनवी
16 तर्जुमा-ए-जोगबशिष्ठ

अंतिम किताब को छोड़कर, बाकी सभी पुस्तकें दारा शुकोह की रचनाएँ हैं। अंतिम किताब के मामले में, शोधकर्ताओं का मत है कि इसे दारा शुकोह ने लिखा था, यही कारण है कि इसका उल्लेख यहाँ किया गया है। इन पुस्तकों का संक्षिप्त परिचय और उनका सारांश नीचे प्रस्तुत किया गया है।

सफ़ीनतुल-औलिया:

सफ़ीनतुल औलिया दारा शुकोह की पहली रचना है। उन्होंने यह किताब 1639 में पूरी की थी। उस समय दारा शुकोह की आयु 25 वर्ष थी। यह किताब सूफ़ियों के तज़किरे को समर्पित है। यानी यह किताब प्राचीन सूफ़ियों और उनके साथियों के जीवन और सेवाओं का संक्षिप्त वर्णन करती है।

लेकिन जैसा कि इसी किताब में अन्यत्र बताया गया है, मेरी नज़र में यह किताब एक जीवनी-ग्रंथ से अधिक दारा शुकोह की स्वयं की खोज की यात्रा है। इस किताब में दारा शुकोह ने इस्लामी इतिहास की प्रमुख हस्तियों का हवाला देकर अपनी आध्यात्मिक यात्रा के गंतव्य को खोजने की कोशिश की है और अपने लिए आदर्श और उदाहरण खोजने का प्रयास किया है।

सफ़ीनतुल-औलिया में उन्होंने लगभग 400 सूफ़ियों की जीवनियाँ एकत्रित की हैं। लेखक की लेखन पद्धति यह है कि वे प्रामाणिक संदर्भों का उपयोग करके जन्म से लेकर मृत्यु तक प्रत्येक व्यक्तित्व का विवरण एकत्र करते हैं और फिर सूफ़ीवाद के संदर्भ में उनका महत्त्व बताते हैं। उनका संदर्भ देने का अंदाज़ पुराना है। अर्थात्, वे आमतौर पर किताब का नाम या लेखक का नाम बताते हैं। चूंकि उन दिनों पुस्तकें छपती नहीं थीं इसलिए संदर्भ की यह पद्धति सभी जगह प्रचलित थी।

दारा शुकोह द्वारा दिए गए संदर्भ आमतौर पर प्रसिद्ध पुस्तकों से हैं और उनकी ऐतिहासिक विद्वता भी बहुत मज़बूत है। इसलिए वे अपने लेखों और घटनाओं में तारीख़ों और उम्रों के साथ-साथ जन्म और मृत्यु का भी बहुत सावधानी से उल्लेख करते हैं।

सफ़ीनतुल-औलिया केवल सुप्रसिद्ध अर्थ में सूफ़ीवाद का तज़किरा नहीं है। बल्कि, यह किताब मूलतः इस्लामी इतिहास की सभी महान आध्यात्मिक हस्तियों का उल्लेख है क्योंकि दारा शुकोह ने इस किताब को लिखना पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल.) की ज़िंदगी के विषय से शुरू किया था। इस किताब में सबसे पहले पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल.) ज़िंदगी का संक्षिप्त वर्णन किया गया है, फिर ख़ुल्फ़ा-ए-राशिदीन, कुछ सहाबा, उम्महातुल उम्मा और पैग़म्बर की बेटियों, अहले-बैत के इमामों, फ़िक़्ह के इमामों आदि के हालात का भी वर्णन किया गया है। इससे पता चलता है कि इस किताब को लिखने में दारा शुकोह का उद्देश्य सिर्फ़ सूफ़ीवाद के बारे में लिखना नहीं था, बल्कि आध्यात्मिक महानता हासिल करने के लिए एक

आदर्श और नमूने की तलाश थी। यह सिर्फ़ सूफ़ीवाद तक सीमित नहीं है। यानी सफ़ीनतुल औलिया तलाश-ए-ज़ात (स्वयं को खोजना) का एक प्रयास है।

दारा शुकोह ने इस किताब में अपनी लेखन शैली और विषय-वस्तु के बारे में अपने विचार व्यक्त करते हुए इसकी भूमिका में लिखा है:

> “विश्वसनीय पुस्तकों से व्यापक शोध और खोज के बाद मैंने सैय्यद अल-कुनैन और उन ख़ुल्फ़ा-ए-राशिदीन से संबंधित परिस्थितियों और घटनाओं को संकलित किया है। इस्लाम में उनका दर्जा इस्लाम के स्तंभों जैसा है। उनसे प्रेम और स्नेह व घृणा और शत्रुता ख़ुदा से मित्रता और शत्रुता के समान है। उनके बाद के बारह इमामों की कहानियाँ भी संग्रहित की गई हैं, क्योंकि वे रसूलुल्लाह (सल्ल.) के सच्चे उत्तराधिकारी हैं। चार इमाम, जिन्हें ईश्वर ने हज़ारों लोगों का मार्गदर्शन करने के लिए नियुक्त किया था, और वे औलिया जिनके बारे में हदीस "उल्मा-ए-उम्मती का अंबियाई बनी इस्राईल" मौजूद है, बाहरी और आंतरिक ज्ञान दोनों में सरचश्मा-ए-फ़ैज़ाने रिसालत हैं। मैंने उनके हालात को भी इस किताब में संकलित किये है।”(1)

सफ़ीनतुल औलिया में ज़्यादातर हालात उन्ही लोगों के जमा किए गए हैं जिन्हें प्रसिद्ध सूफ़ियों के रूप में जाना जाता है। इसलिए उन्होंने तज़किरा लिखने में सूफ़ियों के सिलसिले ही को मानक बनाया है। जैसे कि क़ादरी, चिश्ती, नक़्शबंदी और सुहरवर्दी सिलसिले, आदि। उन्होंने अपने-अपने संप्रदाय के प्रत्येक सूफ़ी का उल्लेख किया है तथा जिनके बारे में उनको यक़ीन से मालूम नहीं हो सका कि उनका सिलसिला क्या है, इसका उन्होंने विविध शीर्षक के अंतर्गत इकट्ठा कर दिया है और भूमिका में इसकी व्याख्या भी कर दी है।

सफ़ीनतुल औलिया नि:संदेह बड़ी बेहतरीन किताब है और इसका बहुत महत्व है। दारा शुकोह के समय से लेकर आज तक यह बहुत लोकप्रिय है। इसके कई एडिशन आगरा, लखनऊ, दिल्ली, कानपुर और ईरान से प्रकाशित हुए। इसका

कई भाषाओं में अनुवाद हो चुका है और कई लोगों ने इस किताब का परिचय भी कराया है। यही इस किताब के लोकप्रिय होने का प्रमाण है।

सकीनतुल-औलिया:

सकीनतुल-औलिया दारा शुकोह की दूसरी कृति है। उन्होंने इस किताब को 1642 में लिखना शुरू किया और 1648 में इसे पूरा किया। यह किताब हज़रत मियाँ मीर (रह.) की जीवनी है। इस किताब में दारा शुकोह ने हज़रत मियाँ मीर क़ादरी के जीवन और सेवाओं का विस्तार से वर्णन किया है। हज़रत मियाँ मीर (रह.) के साथ-साथ इस किताब में हज़रत के उत्तराधिकारियों और शिष्यों का भी उल्लेख है। दारा शुकोह हज़रत मियाँ मीर के प्रति बहुत श्रद्धा रखते थे, लेकिन वह उनके बाक़ायदा मुरीद नहीं बन सके थे। दारा शुकोह के बाज़ाब्ता पीर हज़रत मियां मीर के ख़लीफ़ा मुल्ला शाह बदख़्शी थे। इस किताब में उनके भी हालात का विस्तार से वर्णन किया गया है।

सकीनतुल औलिया एक बहुत ही बेहतरीन वाली किताब है। इसमें उनकी लेखन शैली बहुत अनोखी है। दारा शुकोह के बारे में सबसे बड़ी बात यह है कि उन्होंने हज़रत मियां मीर (रह.) से जुड़ी हस्तियों से मुलाक़ात और साक्षात्कार करके बड़ी मेहनत और शोध के बाद उनके हालात को इकट्ठा किया है। पूरी किताब उनकी कड़ी मेहनत और शोध की बेहतरीन मिसाल है। यह किताब आज के युग में प्रचलित लेखन एवं शोध पद्धतियों के पूर्णतया अनुरूप है।

इस किताब में हज़रत मियाँ मीर (रह.) पर एक विस्तृत लेख शामिल है। इस लेख में इस किताब का विस्तृत परिचय भी शामिल है। इसलिए इस समय इसका विस्तार से परिचय देने की आवश्यकता नहीं है।

रिसाला हक़नुमा:

रिसाला हक़नुमा भी दारा शुकोह की एक महत्वपूर्ण किताब है। इस किताब में दारा शुकोह ने सफ़र-ए-सुलूक (आध्यात्मिकता) और रूहानी मंज़िलों की हक़ीक़तों को बयान किया है। वह दुनिया और हालात जिनसे होकर साधक आध्यात्मिकता की अपनी यात्रा में गुज़रता है, जैसे धर्मशास्त्र की दुनिया, इंसानों

की दुनिया और ब्रह्मलोक आदि, इसमें इन दुनियाओं का वर्णन है। यह किताब अपने आकार के हिसाब से छोटी है, लेकिन इसमें अर्थ की पूरी दुनिया छिपी है। इसमें सूफ़ीवाद, ख़ासकर अस्तित्ववादी सूफ़ीवाद की चुनौतियों और मुद्दों का वर्णन किया गया है।

दारा शुकोह ने इस रिसाले (पत्रिका) में शुरू में चार अध्याय लिखे, जैसा कि उन्होंने स्वयं इस रिसाले की भूमिका में लिखा है। लेकिन अब इस रिसाले की सभी उपलब्ध प्रतियों में छह अध्याय हैं। संभवतः, बाद में उन्होंने इसमें दो अध्याय और जोड़ दिए होंगे जिनका उल्लेख भूमिका में करना वे या तो भूल गए होंगे या फिर उन्हें ऐसा करने का मौक़ा ही नहीं मिला।

रिसाला हक़नुमा के पहले चार अध्याय नैतिकता और आध्यात्मिकता के चार लोकों या चार क्षेत्रों से परिचय के बारे में हैं। अर्थात् आलम-ए-नासूत (मर्त्यलोक), आलम-ए-मलकूत (देवलोक), आलम-ए-जबरूत (ब्रह्मलोक), आलम-ए-लाहूत (सूफ़ीवाद, जहाँ ईश्वर के सिवा और कुछ नहीं होता)। तरीक़त के अनुयायी जानते हैं कि ये चार दुनियाएँ या चार क्षेत्र, राह-ए-सुलूक के महत्वपूर्ण चरण हैं और तरीक़त का मार्ग इन चार दुनियाओं की पहचान और उनके बीच की यात्रा पर निर्भर करता है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि यह रिसाला दारा शुकोह ने उस समय लिखी थी जब वह सूफ़ीवाद और आत्मज्ञान की आध्यात्मिक ऊंचाइयों पर पहुंच चुके थे। ऐसा लगता है कि उन्होंने जो लिखा था वह अपने अनुभवों के आलोक में लिखा था।

हसनातुल-आरिफ़ीन

हसनातुल-आरिफ़ीन भी दारा शुकोह की सबसे महत्वपूर्ण पुस्तकों में से एक है। इस किताब में उन्होंने सूफ़ीवाद के इतिहास में एक बहुत ही अनोखे और जटिल विषय अर्थात् शतहात को अपना विषय बनाया है। शतहात का अर्थ है वे शब्द जो साधक परमानंद की स्थिति में अपनी ज़बान से बोलता है, और उनमें एक निश्चित सहजता और आत्मभोग की झलक होती है। साथ ही, उनमें अभिमान की एक अनूठी शैली भी है। जैसे कि मंसूर हल्लाज का “अनल-हक़” कहना या बायज़ीद

बिस्तामी (रह.) का यह कहना कि मेरे घर में ख़ुदा के सिवा कोई नहीं है आदि शब्दों को सूफ़िया के शतहात कहा जाता है।

राह-ए-सुलूक, जैसा कि सूफ़िया कहते हैं, एक वक़्त ऐसा आता है जहां साधक स्वयं पर नियंत्रण खो देते हैं, ज़बान भी उनकी पकड़ से निकल जाती है और उनकी ज़बान से ऐसे शब्द निकलने लगते हैं जो साधक के लिए तो वारिदात (आंतरिक अवलोकन) होती हैं लेकिन आम लोगों के लिए उसके अर्थ आपत्तिजनक हो जाते हैं।

दारा शुकोह पर भी राह-ए-सुलूक में शतहात का असर होने लगा था और परिस्थितियों के प्रभाव में उनकी ज़बान से सतहिया शब्द अनायास ही निकलने लगे थे। जब लोगों ने इस पर आपत्ति की तो उन्होंने इन आपत्तियों का उत्तर देने और शतहात की वास्तविकता तथा सूफ़ी मत के अनुसार शतहात की स्थिति और वास्तविकता को स्पष्ट करने के लिए यह किताब लिखी। उन्होंने स्वयं इस किताब की भूमिका में लिखा है:

> "इन दिनों अर्थात् सन् 1062 हिजरी में जब मैं 38 वर्ष का था, यह फ़क़ीर अहले-तसव्वुफ़ और सुलूक (सूफ़ीवाद) की किताबों से परेशान था और मेरी नज़र में ख़ुदा के अलावा किसी और का ख़्याल ही नहीं था। इस हालत में कभी-कभी परमानंद की अवस्था में या आवेश और इच्छा की अवस्था में, कुछ सत्य और उच्च शिक्षाएँ ज़बान से निकल जाते थे। परन्तु तपस्वी, जो कम हौसला, दिखावटी और नीरस तथा शुष्क स्वभाव के थे, अपनी तुच्छ दृष्टि से इन शब्दों की आलोचना और निन्दा करते थे और कुफ़्र के फ़तवे जारी करते थे। इस वजह से इस फ़क़ीर के मन में यह विचार आया कि महान एकेश्वरवादी और ईश्वर के ज्ञाता, जो इस सृष्टि में सर्वश्रेष्ठ और सबसे अधिक धार्मिक हैं, उनके पास भी ऐसे बेहतरीन शब्द हैं जिन्हें शतह कहते हैं। ये शब्द सूफ़ीवाद की पुस्तकों में भरे पड़े हैं; उन्हें एकत्र किया जाना चाहिए ताकि वे एक मज़बूत दलील बनें।"(2)

इन शतहात के बारे में सूफ़ियों और विद्वानों का यह भी मत रहा है कि या तो सूफ़ी शतहात के शब्दों की व्याख्या कर दी जाएगी या फिर इन शब्दों के बोलने वाले को तत्कालीन परिस्थितियों के कारण अक्षम मान लिया जाएगा। यानी इन शब्दों पर उनकी पकड़ नहीं होगी क्योंकि सूफ़ी लोग ये शब्द सचेत रूप से नहीं बोलते, बल्कि जब परिस्थितियाँ और घटनाएँ उन पर हावी हो जाती हैं, तो ऐसे शब्द अनायास ही उनके मुँह से निकल जाते हैं, ख़ुद उनको भी ऐसे शब्दों का होश ही नहीं रहता।

सूफ़िया-ए-किराम इसकी मिसाल यूँ देते हैं कि जैसे लोहा आग में तपने पर लाल हो जाता है और उसके रंग और आग के रंग में कोई अंतर नहीं होता, अगर उस लोहे को ज़बान मिल जाए और वह कहे, "मैं आग हूँ" तो ऐसा कहना सही होगा। इसी तरह जब कोई सूफ़ी किसी ख़ास अवस्था में होता है तो उसकी ज़बान से ऐसे शब्द निकलते हैं जो शरीयत में जायज़ हैं। हालाँकि, सभी विद्वानों और सूफ़ियों का यह मानना है कि इन शब्दों के लिए ये लोग अक्षम माने जाएँगे। इन शब्दों के लिए उन्हें ज़िम्मेदार नहीं ठहराया जाएगा।

दारा शुकोह ने हसनातुल-आरिफ़ीन शतहात के विषय पर लिखा है और इस किताब में उन्होंने कुछ महान सूफ़ियों के शतहात का उल्लेख किया है और उनमें कुछ वाक्यों की व्याख्या भी की है। जिससे अंदाज़ा हो सके कि सूफ़िया के इन अल्फ़ाज़ को किस तरह ख़ूबसूरती से उकेरा जा सकता है।

हसनातुल आरिफ़ीन की एक ख़ास विशेषता यह है कि इस किताब में उन्होंने इस्लामी इतिहास के महान सूफ़ियों के साथ-साथ भारत के कुछ विद्वानों और हिंदू धर्म के योगियों की शिक्षाओं का भी उल्लेख किया है। इस किताब का यह महत्व इसे शतहात पर लिखी गई पुस्तकों में एक अलग स्थान देता है कि इसमें उन्होंने मुस्लिम सूफ़ियों के साथ-साथ हिंदू तपस्वियों और योगियों की ऐसी बातों का भी उल्लेख किया है। भारतीय परंपरा में इन योगियों व तपस्वियों को परमहंस कहा जाता है। हसनातुल-आरिफ़ीन में भारतीय योगियों या परमहंस संन्यासियों की कुछ शतहात का भी उल्लेख किया गया है।(3)

मजमउल-बहरैन

हालाँकि, रिसाला हक़नुमा के प्रकाशन के बाद, दारा शुकोह के लेखन का दूसरा दौर शुरू हो गया था। यानी उन्होंने दूसरे धर्मों की परंपराओं का भी अध्ययन करना शुरू कर दिया था। लेकिन इस विचार में उनकी परिपक्वता मजमउल-बहरैन से शुरू होती है। वह इस्लामी सूफ़ीवाद की परंपरा से पहले से ही अच्छी तरह परिचित थे। इसके बाद उन्होंने वेदांत का अध्ययन किया और महसूस किया कि सूफ़ीवाद और वेदांत की परंपरा में ज्यादा अंतर नहीं है। बल्कि, वास्तविक अंतर केवल शब्दों का है। इन शब्दों में वर्णित तथ्य एक जैसे हैं। इसलिए अगर बीच में शब्दों का कोई आवरण न हो तो सूफ़ीवाद और वेदांत की परंपरा दो महासागरों के मिलन की तरह है। यानी सूफ़ीवाद और वेदांत दो ऐसे दरिया हैं जो साथ-साथ बहते हैं। वे न तो एक-दूसरे के ख़िलाफ़ हैं और न ही एक-दूसरे के विरोधी, बल्कि एक-दूसरे के साथ सामंजस्य रखते हैं। (4)

दारा शुकोह ने सबसे पहले अपने ये विचार शाही परिवार के सदस्यों के सामने रखे थे। वह शायद चाहते थे कि शाही दरबार के कुछ शक्तिशाली लोग उसके साथ जुड़ें ताकि वह इन विचारों को और आसानी से प्रसारित कर सकें। दरबार में कई लोगों ने उनका समर्थन किया। लेकिन कुछ लोगों ने उन पर आपत्ति भी जताई थी। इन आपत्तियों का जवाब देने के लिए दारा शुकोह ने यह किताब लिखी। इसीलिए इस किताब का नाम मजमउल-बहरैन रखा गया था। चूँकि यह किताब सिर्फ़ शाही परिवार के सदस्यों के लिए लिखी गई थी इसलिए यह किताब बहुत छोटी और संक्षिप्त है और इसमें कई तथ्य केवल संकेतों में ही बताए गए हैं। इस किताब में दारा शुकोह द्वारा उजागर किये गए तथ्यों पर बाक़ायदा एक लेख शामिल है। इसमें इस किताब का विस्तृत परिचय भी दिया गया है। इसलिए यहां इसका विस्तार से वर्णन नहीं किया गया है।

सिर्रे अकबर:

सिर्रे-अकबर दारा शुकोह की बहुत मशहूर किताब है। सिर्रे-अकबर का दूसरा नाम सिर्रुल-असरार भी है। पहले नाम का अर्थ है सबसे बड़ा रहस्य, और दूसरे

नाम का अर्थ है रहस्यों का रहस्य। दोनों नामों का मूल अर्थ एक ही है, अर्थात गहरा रहस्य।

सिर्रे-अकबर दारा शुकोह की मूल रचना नहीं है, बल्कि प्रसिद्ध संस्कृत पुस्तकों यानी उपनिषदों का अनुवाद है। दारा शुकोह ने इस किताब का अनुवाद करने के लिए संस्कृत सीखी और उसमें महारत हासिल की। इसके बाद उन्होंने यह अनुवाद किया, फिर भी एहतियात के तौर पर उन्होंने बनारस से कई हिंदू विद्वानों को बुलाकर अपने साथ रखा और उनकी मदद से 52 उपनिषदों का फ़ारसी में अनुवाद किया।

उपनिषदों के इस अनुवाद से दारा शुकोह की एक और ख़ूबी का पता चलता है। इस किताब में उनकी अनुवाद करने की क्षमता उभर कर सामने आती है। उन्होंने इसका अनुवाद इतनी ख़ूबसूरती से आसान भाषा में किया है कि ऐसा लगता है मानो मूल लेख यही हो। यह अनुवाद बहुत लोकप्रिय हुआ। बाद में, इस अनुवाद के माध्यम से ही उपनिषदों पूरी दुनिया में पढ़े और समझे जाने लगे। यूरोप में भी हिंदू धर्म और उपनिषदों का परिचय इसी किताब के माध्यम से हुआ। इसके बाद, बड़ी संख्या में यूरोपीय प्राच्यविद्, विशेषकर जर्मनी से, भारत आए और हिंदू धर्म व संस्कृत भाषा पर अपना शोध प्रस्तुत किया।

इस किताब में सिर्रे-अकबर के परिचय पर एक विस्तृत लेख शामिल है। इस लेख में सिर्रे-अकबर का विस्तृत परिचय भी दिया गया है और इस किताब के संबंध में भारतीय धर्मों के अध्ययन के क्षेत्र में दारा शुकोह के योगदान का उल्लेख किया गया है। इसलिए सिर्रे-अकबर का विस्तृत परिचय यहां नहीं दिया गया है।

मुकालमा बाबा लाल बैरागी:

इस किताब मुकालमा बाबा लाल बैरागी या मख़ज़नुन-नुकात या नादिरुन-नुकात के नाम से भी मशहूर है। यह दारा शुकोह और बाबा लाल बैरागी के बीच मुकालमा है।(5) बाबा लाल बैरागी उत्तर भारत के एक प्रसिद्ध संत थे। उनकी मूल मातृभूमि के बारे में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। इतिहासकारों का आम तौर पर यह मत है कि वे उत्तर भारत के निवासी थे। दारा शुकोह की

उनसे पुरानी मुलाक़ात थी। पहले आगरा में ही मुलाक़ात हुई थी। दारा शुकोह एक बार लाहौर में थे, जब उन्हें पता चला कि बाबा लाल भी लाहौर के पास एक कुटिया में रह रहे हैं। दारा शुकोह वैसे भी इन दिनों विभिन्न धर्मों का अध्ययन कर रहे थे, इसलिए वह भी उनकी सेवा में हाज़िर हुये। दारा शुकोह तीन दिन तक उनकी कुटिया में रहे। अपने प्रवास के दौरान उन्होंने राह-ए-सुलूक के मुश्किल बिन्दुओं को समझने की कोशिश की। उन्होंने उनसे राह-ए-सुलूक के बारे में कई प्रश्न पूछे, जिनका बाबा लाल ने सराहनीय उत्तर दिया। तीन दिन बाद दारा शुकोह लाहौर लौट आये।

दारा शुकोह को बाबा लाल के व्यक्तित्व में उस आदर्श पुरुष के गुण नज़र आए जिनको वह तलाश कर रहे थे। इसलिए कुछ दिनों के बाद वह पुनः उनकी सेवा में गये और राह-ए-सुलूक की कठिनाइयों के विषय में और अधिक प्रश्न प्रस्तुत किये। बाबा लाल ने सभी को बहुत संक्षेप में उत्तर दिया। दारा शुकोह की दोनों यात्राओं में उनके साथ चन्द्रभान ब्राह्मण भी थे। दारा शुकोह ने उनसे प्रश्न और उत्तर लिखने का हुक्म दिया था। इसलिए वह दारा शुकोह के प्रश्न और बाबा लाल के उत्तर लिखते रहे। बाद में दारा शुकोह ने उन्हें संशोधित कर एक किताब का रूप दिया। यह किताब अब विभिन्न नामों से उपलब्ध है। लेकिन मुकालमा शब्द सभी में शामिल है। इस किताब की भूमिका पर भी विस्तृत लेख है। इसलिए इसे यहाँ विस्तार से नहीं बताया गया है।

मुकालमा बा-फ़तेह अली क़लंदर (रह.):

दारा शुकोह की रचनाओं में मुकालमा बा-फ़तेह अली क़लंदर (रह.) किताब का नाम भी मिलता है। इसका उल्लेख डॉ. तारा चंद और प्रोफ़ेसर अमीर हसन आबिदी ने जोग बशिष्ठ की भूमिका में किया है। (6) इसी भूमिका में यह पुस्तिका पूरी प्रकाशित की है। इस पत्रिका की पांडुलिपि (manuscript) मीर ज़ामिन अली लाइब्रेरी, शाहगंज, आगरा में उपलब्ध है। यह पत्रिका कुछ पृष्ठों की है। इसका अभी तक उर्दू में अनुवाद नहीं हुआ था, इसलिए इसका फ़ारसी मूल लेख और उर्दू अनुवाद इस किताब के अंत में शामिल किया गया है।

दीबाचा-ए-मुरक़्क़ा:

दारा शुकोह ने सुलेख (कैलीग्राफ़ी) और चित्रकला के दुर्लभ नमूनों का एक संग्रह तैयार किया था। दारा शुकोह ने यह संग्रह अपनी बीवी नादिरा बेगम के लिए संकलित किया था। यह संग्रह इंडिया ऑफ़िस लाइब्रेरी में सुरक्षित है। पर्सी ब्राउन ने भी इसका परिचय दिया है। उनके अनुसार इस एलबम में 40 तस्वीरें हैं। यह कला की एक असाधारण उपलब्धि है और यह संयोग ही है कि यह संग्रह समय की मार झेलते हुए आज भी मौजूद है। प्रोफ़ेसर महफ़ूज़ुल-हक़ के अनुसार, दारा शुकोह ने इस पांडुलिपि के लिए एक भूमिका लिखी थी, जो पेरिस में मौजूद है।(7) डॉ. सैयद अब्दुल्लाह चुग़ताई ने भी अपने एक लेख में इस भूमिका के अंश को पेश किया है और इस एलबम के इंडेक्स को भी अपने लेख में शामिल किया है। मौलवी मुहम्मद शफ़ी ने भी इसका विस्तृत परिचय दिया है।

दीबाचा-ए-मुरक़्क़ा पहली बार अब्दुल्लाह चुग़ताई द्वारा मई 1937 में ओरिएंटल कॉलेज मैगज़ीन, लाहौर में प्रकाशित की गई थी। यह पांडुलिपि (manuscript) त्रुटियों से मुक्त नहीं है। मूल पांडुलिपि पेरिस में है और इसके कहीं और प्रकाशन की कोई ख़बर नहीं है। इसकी त्रुटियों के कारण इसका अनुवाद नहीं किया गया, वरना यह इस क़ाबिल है कि इसका उर्दू और अंग्रेज़ी में अनुवाद होना चाहिए। बहरहाल, इसका संक्षिप्त परिचय इस किताब में अलग से शामिल किया गया है।

दीवान-ए-अशआर

दारा शुकोह एक बहुत अच्छे शायर भी थे। क़ादरी उनका तख़ल्लुस था। उनकी शायरी का एक मुद्रित (प्रिंटेड) संग्रह उपलब्ध है। उनकी शायरी अधिकतर रहस्यवादी है तथा शायरी में तग़ज़्ज़ुल बहुत कम है, उनमें अधिकतर रहस्यवाद और तथ्यों के अर्थ, शिक्षाएँ तथा सूफ़ीवाद के प्रतीक व रहस्य बयान किए गए हैं।

दारा शुकोह के बारे में इतिहासकारों ने लिखा है कि उनका दीवान संक्षिप्त है। लेकिन अपनी संक्षिप्तता के बावजूद इसमें एक हज़ार से ज़्यादा ग़ज़लें हैं।

स्वयं दारा शुकोह ने एक शायरी में इस दीवान के बारे में लिखा है कि उन्होंने एक हज़ार से अधिक ग़ज़लें लिखी हैं:

हज़ार व बिस्त ग़ज़ल गुफ़्त क़ादरी दर इश्क़
मगर चे सूद कसी मुतनबेह नमी गर्दद

अर्थात् मैंने इस दीवान में प्रेम के विषय पर एक हज़ार बीस ग़ज़लें लिखी हैं, लेकिन क्या फ़ायदा क्योंकि उनका किसी पर कोई असर नहीं होता। इस शायरी में प्रेम का अर्थ राह-ए-सुलूक ही है अन्यथा उन्होंने ग़ज़लिया शायरी तो उन्होंने की ही नहीं।

ग़ज़लों के अलावा दारा शुकोह की शायरी में रुबाई (चौपाई) और मसनवियाँ भी शामिल हैं। हालाँकि, पूरी शायरी सूफ़ियाना ही है।

सूफ़ीवाद और नैतिकता के प्रतीकों के अलावा दारा शुकोह ने अपने पीरों की भी तारीफ़ की है। हज़रत मियां मीर क़ादरी की शान में भी एक मसनवी है। इसके अलावा भारत में कुछ स्थानों की तारीफ़ में भी मसनवियां हैं। उदाहरण के लिए, उन्होंने पंजाब और लाहौर की तारीफ़ में कई शेर लिखे हैं। एक शेर है:

बूद आबाद दाएम शहर-ए-लाहौर
वबा-ओ-क़हत अज़ीं जा दूर दारद

अर्थात् लाहौर शहर हमेशा आबाद रहे और अल्लाह तआला इस शहर से महामारी और अकाल को हमेशा दूर रखे।

दारा शुकोह निस्संदेह एक बहुत अच्छे शायर थे। लेकिन उनकी शायरी में हमेशा उच्च ज्ञान और तथ्यों को ही जगह मिलती थी। इसलिए उनकी सम्पूर्ण शायरी सूफ़ीवाद की किताब प्रतीत होती है। क्योंकि उन्होंने अपनी शायरी में सिर्फ़ सूफ़ीवाद की शिक्षाओं को ही व्यक्त किया है, इसलिए उनकी शायरी में कई स्थान ऐसे हैं जहाँ बात करते हुए हाथ काँपते हैं और ज़बान में बोलने की शक्ति नहीं बचती। कभी-कभी इन चीज़ों के लिए उचित व्याख्या होती है, और कभी-कभी ऐसी जगहें होती हैं जिन्हें किसी भी व्याख्या के ज़रिए सकारात्मक तरीक़े से नहीं समझाया जा सकता। यानी कभी-कभी उन चीज़ों का वर्णन करने के लिए पूरी

तरह से खुले शब्दों का इस्तेमाल किया जाता है जो धार्मिक दृष्टिकोण से औचित्य के दायरे में नहीं आते हैं।

लेकिन उनका दीवान मौजूद है। इसके प्रिंटेड एडिशन में 224 पेज हैं। कुछ क़ाबिल-ए-ऐतराज़ जगहों को नज़रअंदाज किया जा सकता है क्योंकि शायरी में अभिव्यक्ति की एक सीमा होती है। यह ज्ञात नहीं है कि वह क्या कहना चाहते थे और शब्दों की संकीर्ण सीमाओं ने उनके शब्दों को क्या बना दिया। लेकिन कुछ स्थान ऐसे हैं जहां व्याख्या के बोझ की आवश्यकता नहीं है; वहां वहदतुल-वुजूद की अवधारणाएं स्पष्ट रूप से बताई गई हैं।

तरीक़तुल-हक़ीक़त:

दारा शुकोह की एक किताब तरीक़तुल-हक़ीक़त भी है। इस किताब का हवाला कई इतिहासकारों ने दिया है। इस किताब में दारा शुकोह ने सूफ़ीवाद के कुछ मुद्दों को समझाया है। हालांकि यह किताब मुझे नहीं मिल पाई है। बिक्रमाजीत हसरत ने इस किताब का विस्तृत परिचय दिया है। उनके अनुसार, यह किताब सूफ़ीवाद के विभिन्न चरणों का वर्णन करती है, जैसे कि ये मक़ामात-ए-तसव्वुफ़ की किताब हो। दारा शुकोह ने इसमें राह-ए-सुलूक के मार्ग के तीस चरणों का संक्षेप में वर्णन किया है।(8)

रिसालतुल-मआरिफ़

प्रोफ़ेसर महफ़ूज़ुल-हक ने दारा शुकोह की एक किताब का ज़िक्र किया है जिसका नाम है रिसालतुल मआरिफ़। उन्होंने यह नाम खज़ीनतुल-अस्फ़िया के हवाले से लिखा था। इसका विषय भी सूफ़ीवाद ही है, लेकिन इसकी प्रति कहीं उपलब्ध नहीं है।

बयाज़-ए-दारा शुकोह:

दारा शुकोह की एक किताब बयाज़ के नाम से है यानी यह उनकी बाज़ाब्ता किताब नहीं है, बल्कि या तो अधूरी किताब है या फिर उनकी डायरी है, इसलिए इसे बयाज़ कहा जाता है। इस किताब का ज़िक्र डॉ. ताराचंद और प्रोफ़ेसर अमीर हसन आबिदी ने जोग बशिष्ट की भूमिका में किया है।

मकातीब:

जोग बशिष्ट की भूमिका में शोधकर्ताओं ने दारा शुकोह के एक मजमूआ-ए-मकातीब का भी उल्लेख किया है। इसके बारे में भी कोई और विवरण उपलब्ध नहीं है।

मसनवी:

जोग बशिष्ट की भूमिका में भी एक मसनवी का उल्लेख किया गया है। लेकिन कोई ब्यौरा नहीं दिया गया है।

जोग बशिष्ट:

जोग बशिष्ट एक बहुत प्रसिद्ध संस्कृत किताब है। जिसका अनुवाद दारा शुकोह ने नहीं, बल्कि उसके आदेश से और उसकी देखरेख में किया गया था। अनुवाद करने वाले का नाम तो पता नहीं है, लेकिन यह तय है कि यह अनुवाद दारा शुकोह ने नहीं, बल्कि किसी और ने किया था। हालांकि, इसकी भूमिका में साफ़ लिखा है कि दारा शुकोह ने ख़ुद इसके अनुवाद का आदेश दिया था और यह भी कहा था कि हालांकि इस किताब के अनुवाद मौजूद हैं, लेकिन वे संतोषजनक नहीं हैं और इसलिए इसका दोबारा अनुवाद किया जाना चाहिए। इस किताब की भूमिका में इसके अनुवाद के बारे में दारा शुकोह के एक सपने का भी हवाला दिया गया है।

तारीख़-ए-शमशेरख़ानी:

यह शाहनामा का सारांश है, जिसे दारा शुकोह के किसी सहायक ने उसके आदेश पर तैयार किया था।(9)

दारा शुकोह से सम्बंधित अन्य पुस्तकें:

उपरोक्त सूची के अलावा, इतिहासकारों ने कुछ अन्य पुस्तकों का श्रेय भी दारा शुकोह को दिया है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, दारा शुकोह की रचनाएँ उनके इंतिक़ाल के बाद बिखर गईं थीं इसलिए निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि इनमें से कितनी पुस्तकें वास्तव में उनके प्रयासों का हिस्सा थीं।

उपरोक्त सूची में उल्लिखित पुस्तकों के संबंध में तो यक़ीन है कि ये सभी दारा शुकोह की रचनाएँ हैं, तथा इनमें से कुछ को छोड़कर बाक़ी प्रकाशित भी हो चुकी हैं, तथा इनमें से अधिकांश का विभिन्न भाषाओं में अनुवाद भी हो चुका है।

उपर्युक्त पुस्तकों के अतिरिक्त, डॉ. तारा चंद और प्रोफ़ेसर अमीर हसन आबिदी ने निम्नलिखित पुस्तकों का उल्लेख किया है जिन्हें किसी न किसी रूप में दारा शुकोह से संबंधित माना जाता है।

1. भगवत गीता
2. तुज़्क
3. रिसाला-ए-मआरिफ़
4. रमूज़-ए-तसव्वुफ़

इन पुस्तकों के अतिरिक्त, संभवतः निम्नलिखित पुस्तकें भी दारा शुकोह द्वारा लिखी गयी थीं:

1. क़ुरआन मजीद
2. पंज सूरा
3. सफ़ीनतुल औलिया
4. रिसाला हिकमत-ए-अरस्तु
5. दह पिंद अरस्तु
6. शरह दीवान-ए-हाफ़िज़ अज़ सैफ़ुद्दीन अबुल हसन अब्दुर्रहमान
7. बारह वसलियां, बहुत सुन्दर एवं अच्छी तरह से लिखे गए

(यह सारी जानकारी डॉ. तारा चंद और प्रोफ़ेसर अमीर हसन आबिदी द्वारा संपादित और अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी द्वारा 1968 में प्रकाशित जोग बशिस्त (जोग बशिष्ट) किताब की भूमिका से ली गई है।)

दारा शुकोह ने अपने दरबार में विद्वानों को संरक्षण भी दिया और कई लोगों ने उसके संरक्षण में पुस्तकें भी लिखीं। यह ज्ञात है कि दारा शुकोह के संरक्षण में निम्नलिखित पुस्तकें भी लिखी गईं:

1. क़िससुल अंबिया

यह किताब दारा शुकोह ने किसी से लिखवाई थी।(10)

2. तिब-ए-दारा शुकोही

नूरुद्दीन मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह बिन ऐनुल-मुल्क ने 1056 में तिब (चिकित्सा) विषय पर एक ज़ख़ीम (मोटी) किताब लिखी थी। चूंकि यह किताब दारा शुकोह के संरक्षण में लिखी गई थी, इसलिए लेखक ने किताब का नाम उनके नाम पर रखा दिया था।(11)

3. अक़वाल-ए-वासती

इब्राहिम मिस्कीन ने अबू बकर बिन मुहम्मद बिन मूसा अल-वासती के कथनों का फ़ारसी में अनुवाद किया था। यह अनुवाद भी दारा शुकोह के संरक्षण में किया गया था, इसलिए लेखक ने इसका नाम दारा शुकोह के नाम समर्पित किया था।(12)

संदर्भ:

1. दारा शुकोह: सफ़ीनतुल-औलिया, नवल किशोर प्रेस, 1882, पृ. 12
2. हसनातुल-आरिफ़ीन, सुधार और टिप्पणी के साथ, सैय्यद मखदूम रहबन, तेहरान, 1352, पेज 2
3. As above
4. दारा शुकोह: मजमा अल-बहरीन, प्रोफ़ेसर महफूजुल हक द्वारा शोध, अंग्रेजी अनुवाद के साथ, कलकत्ता 1929, पेज 80
5. योग वशिष्ठ, डॉ. तारा चंद और प्रोफ़ेसर अमीर हसन आबिदी द्वारा संपादित, अलीगढ़ 1968, केस, पेज 23
6. As above पेज: 22
7. मजमउल बहरैन, प्रोफ़ेसर महफूजुल-हक़ द्वारा अंग्रेजी अनुवाद के साथ फ़ारसी पाठ, कलकत्ता, 1929, पेज 15
8. Bikrama Jit Hasrat: Dara Shikoh: Life and Work, Calcutta, 1953 pp.113-120
9. सैयद सबाहुद्दीन अब्दर्रहमान: बज़्म-ए-तैमूरिया, भाग-3, दारुल मुसन्निफ़ीन आज़मगढ़, द्वितीय संस्करण, 1981, भाग-3, पेज 203
10. As above पेज 205
11. As above
12. As above

सूफ़ीवाद और ब्रह्मज्ञान के मार्ग पर

दारा शुकोह कई एतबार से मुग़ल वंश में एक अद्वितीय व्यक्ति हैं। विशेषकर ज्ञान, शालीनता, सूफ़ीवाद तथा लेखन और संकलन में सुल्तान ज़हीरुद्दीन बाबर के अलावा पूरे मुग़ल वंश में कोई दूसरा व्यक्ति उनके बराबर का नहीं है। दारा शुकोह अपने समय के एक महान हस्ती थे। उनकी अहमियत सिर्फ़ उनके अपने दौर के लिए नहीं थी, बल्कि वह हर दौर के लिए एक मिसाल रहे। उन्हें हमेशा एक बुद्धिजीवी, शोधकर्ता, बहुमुखी व्यक्तित्व और लेखक शहज़ादे के तौर पर याद किये जाएँगे। उन्होंने कई शोध पुस्तकें लिखीं और उनकी अधिकांश साहित्यिक रचनाएँ स्थायी महत्व की हैं। उन्होंने सफ़ीनतुल-औलिया नामक किताब लिखी। इस किताब का ऐतिहासिक महत्व भी है और सूफ़ीवाद में इसका बहुत बड़ा स्थान है। इसके अलावा उनकी कई अन्य महत्वपूर्ण पुस्तकें भी हैं। एक अच्छे लेखक होने के साथ-साथ वे एक अच्छे शायर भी थे। उनका एक दीवान (काव्य संग्रह) भी मौजूद है जिसमें उनकी सोच और तसव्वुफ़ की परतें उजागर होती हैं।

इसी तरह दारा शुकोह ने बाबा लाल बैरागी से बातचीत की थी, जो किताब के रूप में भी उपलब्ध है। इस बातचीत में मानव स्वभाव के रहस्यों और स्वयं तथा शैतान के छल के अमूर्त आवरणों का खुलासा किया गया है। सकीनतुल औलिया में उन्होंने अपने आध्यात्मिक मार्गदर्शक हज़रत मियां मीर के जीवन और विचारों का चित्र बनाया है। अगर दारा शुकोह ने सिर्फ़ यही किताबें लिखी होतीं तो उनका नाम इतिहास, सूफ़ीवाद और साहित्य में हमेशा ज़िंदा रहता। लेकिन इनके अलावा दारा शुकोह ने कुछ और भी रचनाएँ लिखी हैं जो कि बेमिसाल हैं। वे रचनाएँ समय और स्थान की सीमाओं से परे हैं। उनके दो कारनामे ऐसे हैं जिन्हें सदैव महत्वपूर्ण उपलब्धियों के रूप में याद किया जाएगा। पहला है सिर्रे-अकबर और दूसरा है मजमउल-बहरैन। सिर्रे अकबर चयनित उपनिषदों का फ़ारसी अनुवाद है और

मजमउल-बहरैन इस्लाम और हिंदू धर्म की आध्यात्मिक परंपराओं के बीच एकता का बिंदु खोजने का एक प्रयास है।

दारा शुकोह स्वभाव से सूफ़ी थे। वे सूफ़ी परंपरा से बहुत प्रभावित थे और एक व्यावहारिक सूफ़ी थे। साथ ही, वे भारत की वेदांत परंपरा से भी बहुत प्रभावित थे। इसलिए उन्होंने अपनी किताब मजमउल-बहरैन में इन दोनों परंपराओं को इकट्ठा करने की कोशिश की है। इस किताब की सबसे बड़ी ख़ूबसूरती यह है कि यह किताब एकेडमिक या शोध के तौर पर नहीं लिखी गई थी बल्कि यह एक सियासी नज़रिये की किताब थी और यह किताब आम जनता के लिए भी नहीं लिखी गई थी, बल्कि यह किताब सिर्फ़ शाही परिवार के लोगों के लिए लिखी गई थी। यानी इस किताब का मक़सद सिर्फ़ शाही परिवार के लोगों को इस मुद्दे को समझाना था।

सूफ़ियों की जीवनी पर उनकी किताब सफ़ीनतुल-औलिया है। यह किताब दरअसल उनके सभी कामों की बुनियाद है। इस किताब के लिखने के बारे में उन्होंने लिखा है कि उन्हें यानी दारा शुकोह को कुछ सपने आए थे जिन्होंने उन्हें आध्यात्मिकता की खोज करने के लिए प्रेरित किया। इस खोज में उन्होंने सूफ़ीयों के हालात पढ़े, मज़ारों पर गए और अपने दिल की दुनिया में डूब कर तसव्वुफ़ की रूह और रूहानियत को समझने की कोशिश की। दारा शुकोह इस दुनिया की खोज में पूरी तरह लीन हो गये और फिर उन्होंने इस खोज में दूसरों को भी शामिल करने का फ़ैसला किया और इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उन्होंने यह किताब सफ़ीनतुल-औलिया लिखी।

दारा शुकोह ने सफ़ीनतुल-औलिया उस वक़्त लिखी थी जब वह केवल पच्चीस वर्ष के थे और यह उनकी पहली रचना थी। सफ़ीनतुल औलिया एक तरह से दारा शुकोह के सफ़र-ए-सुलूक (तसव्वुफ़) की एक मंज़िल है जहां तसव्वुफ़ और इल्मे बातिन का नज़र आना ज़रूरी होता है। दारा शुकोह ने फिर अपनी आध्यात्मिक यात्रा की दूसरी मंज़िल पर सकीनतुल-औलिया लिखी, जिसमें उनके विचार एक क्षेत्र पर ध्यान केंद्रित करने की कोशिश करते दिखते हैं और यही जुनून

की मंज़िल है जहां से उन्हें आत्म-खोज का मार्ग मिला, जिसे उन्होंने अपने जीवन की पूंजी माना। इस मंज़िल पर दारा शुकोह ने बिखरने और एकत्र होने का सबक़ सीखा और इस्लाम की शिक्षाओं को सीखने के बाद उनकी खोज उपनिषदों और वेदांत तक पहुंची। जुनून के इस सफ़र में दारा शुकोह ने न जाने कितने पड़ाव तय किये। सूफ़ियों की आत्मकथाएँ और उनकी अन्य रचनाएँ, जैसे हसनातुल-आरिफ़ीन और मजमउल-बहरैन इसकी केवल कुछ अभिव्यक्तियाँ मात्र हैं।

दारा शुकोह के बारे में यह बात याद रखनी चाहिए कि वह उस समय पूरी दुनिया में दूसरे सबसे शक्तिशाली व्यक्ति थे। उस समय सिर्फ़ तुर्की ही एक ऐसा देश था जो हिंदुस्तान से भी अधिक प्रभावशाली था, अन्यथा हिंदुस्तान दुनिया का सबसे शक्तिशाली देश था। यूरोप के सभी देश, यहां तक कि पूरा यूरोप भी भारत से छोटा था। उत्कृष्टता की ऊंचाइयों पर पहुंचकर ज्ञान और ध्यान की ऐसी साधना काफ़ी असाधारण बात है। दारा शुकोह के व्यक्तित्व में इस परंपरा का जो संगम देखने को मिलता है, वह शायद दुनिया के किसी अन्य राजघराने में नज़र नहीं आता।

यदि दारा शुकोह के जीवन को एक शब्द में बयान किया जाए तो उन्हें 'सूफ़ी शहज़ादा' की उपाधि दी जा सकती है। अपनी अपार सम्पत्ति, सम्मान और वैभव के बावजूद, वह स्वभाव, तौर-तरीक़े, विचार और व्यवहार में बिल्कुल ख़ानक़ाह (मठ) में बैठे सूफ़ी या कुटिया में बैठे संत के समान थे। उन्होंने अपनी संपत्ति भी सूफ़ीवाद, विद्वानों और संतों को समर्पित कर दी। वे बड़ी श्रद्धा से उनकी सेवा में उपस्थित होते थे। उन्होंने प्रश्न पूछे और उनके निर्देशों का पालन किया। सूफ़ीयों के साथ-साथ संतों में भी उनकी गहरी आस्था थी। वह सूफ़ियों और संतों के पास जाया करते थे। वे बाबा लाल बैरागी में बहुत आस्था रखते थे। वे उन्हें हिंदुओं में सबसे क़ाबिल संत मानते थे। एक दिन उन्हें हज़रत बाबा लाल बैरागी की सेवा में उपस्थित होने का अवसर मिला, अतः उन्होंने अवसर का लाभ उठाया और उनसे अपने मन में आए सभी प्रश्न पूछे तथा उनके उत्तर लिख लिए।

दारा शुकोह एक सूफ़ीयाना स्वभाव और प्रवृत्ति वाले व्यक्ति थे, साथ ही वह अध्ययन के भी बड़े शौक़ीन थे। उनके पास ख़ुद भी अपनी लाइब्रेरी में बहुत सी किताबें थीं और शाही लाइब्रेरी भी उनके लिए खुली हुई थी। पढ़ने के साथ-साथ उन्हें लिखने का भी शौक़ था और वे लिखने की कला भी जानते थे। वह एक उत्कृष्ट फ़ारसी लेखक, शायर और योग्य अनुवादक थे। उन्होंने सूफ़ीवाद को समझने, भारतीय परंपराओं के साथ इसकी तुलना करने तथा दूसरों तक पहुंचाने में इस योग्यता का बहुत प्रभावी ढंग से उपयोग किया है।

यदि हम दारा शुकोह की ज़ेहनी सफ़र का विश्लेषण करें, या यूं कहें कि उनकी मानसिक अवस्थाओं के संदर्भ में देखें, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि वह स्वभाव से तो एक शहज़ादे थे लेकिन मन से एक फ़क़ीर थे। शहज़ादा दारा शुकोह का जीवन इस तरह से शुरू हुआ कि उनके जीवन पर दुख की छाया भी नहीं पड़ी। जिस रास्ते से दारा शुकोह गुज़रते थे, वहाँ से रंज व ग़म दूर हो जाते थे। ऐसे माहौल में उनको अंदाज़ा ही नहीं हुआ कि ग़म क्या होता है और आराम किसे कहते हैं। इसलिए वह इस माहौल से उकता गए और अपनी दुनिया से बाहर की वास्तविकताओं को देखने और समझने की कोशिश करने लगे। उन्होंने सत्य की खोज की यात्रा भी शुरू की। वह महात्मा बुद्ध की तरह महल छोड़ने का साहस तो नहीं कर सके लेकिन महल में एक कुटिया बनाने की हिम्मत अवश्य कर डाली और उन्होंने पहले मुस्लिम सूफ़ियों से, फिर हिंदू सन्यासियों से और फिर हिंदू गुरुओं और संस्कृत विद्वानों से शिक्षा ली और उनसे यथासंभव सीखना शुरू कर दिया।

सफ़ीनतुल औलिया में दारा शुकोह ने चार सौ से अधिक सहाबा[1], इमामों, सूफ़ियों और सूफ़ी महिलाओं का उल्लेख किया है जिसमें सूफ़ियों के हालात उनके सिलसिलों के हवाले से लिखे गए हैं, तथा जिन सूफ़ी सिलसिलों का पता नहीं चला, या फिर उनका सिलसिला था ही नहीं, उनका भी ज़िक्र कर दिया है।

---

[1] पैग़म्बर मोहम्मद के साथ रहने वाले या उनके काल के मुसलमान जिन्होंने उनसे उपदेश पाया

हालाँकि, यह भी स्पष्ट किया गया है कि उनका सिलसिला मालूम नहीं है। इस किताब में उन सूफ़ियों के संक्षिप्त विवरण के साथ-साथ उनके इंतिक़ाल की तारीख़ का भी ज़िक्र है, जिसकी रिवायत फ़ारसी की किताबों में कम थी।

सूफ़ियों की जीवनियों के संदर्भ में सफ़ीनतुल-औलिया भी सूफ़ीवाद के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखती है, लेकिन जैसा कि पहले अर्ज़ किया गया है, इस किताब का दारा शुकोह ज़िंदगी में एक और ख़ास मक़ाम है। वह यह कि दारा शुकोह के लिए यह किताब वास्तव में आत्मबोध की प्रक्रिया का हिस्सा है। अर्थात् इस किताब के लेखन के माध्यम से दारा शुकोह ने आत्मबोध (Self-Realization) की एक यात्रा शुरू की जो विभिन्न चरणों से गुज़री। इस सफ़र की एक मंज़िल उनकी दूसरी किताब सकीनतुल औलिया है। फिर यह सफ़र और आगे गया तो गोया रिसाला-ए-हक़नुमा में एक तरह से उनको मंज़िल का इरफ़ान (ब्रह्मज्ञान) हासिल हो गया।

अपनी इस आध्यात्मिक यात्रा का उल्लेख करते हुए दारा शुकोह ने स्वयं रिसाला-ए-हक़नुमा में लिखा है:

> “मेरी पहली किताब सफ़ीनतुल-औलिया, हक़ व सदाक़त और सच्चाई की तलाश का सफ़र है। वह एक प्यास लिए हुए है। उसके बाद जब मुझे मुरीद (शिष्य) बनने का भाग्य प्राप्त हुआ और मैं सूफ़ीवाद के तरीक़ों और सुलूक से परिचित हुआ तो मैंने अपने सूफ़ी बुज़र्गों के हालात पर एक और किताब सकीनतुल औलिया लिखी। अब जब इरफ़ान और तौहीद के दरवाज़े मेरे लिए खुल गए हैं, तो मैं यह किताब अर्थात् हक़नुमा लिख रहा हूँ।”

अर्थात् दारा शुकोह ने जो सफ़र-ए-सुलूक सफ़ीनतुल औलिया में शुरू किया था वह रिसाला हक़नुमा लिखने तक पूरा हो चुका था। जैसे उन्हें वह ज्ञान और पहचान मिल गई थी जो सूफ़ीवाद का लक्ष्य है।

उस समय के अन्य सूफ़ियों की तरह दारा शुकोह का यह सूफ़ियाना सफ़र उन्हें वहदतुल-वुजूद के मुक़ाम तक ले आया। यह राह-ए-सुलूक के मार्ग में एक

ऐसा स्थान है जहाँ सभी मतभेद मिट जाते हैं और सूफ़ियों के अनुसार, ब्रह्मांड की वास्तविकता और एकेश्वरवाद की सच्चाई सामने आती है। हालांकि, यह अंतिम मंज़िल नहीं है जैसा कि हज़रत मुजद्दिद अल्फ़ सानी (रह.) ने कहा है क्योंकि अंतिम मंज़िल ख़ुदा का दीदार होना नहीं है, बल्कि मक़ाम-ए-अबदीय्यत (मानवता का सर्वोच्च स्थान) का एहसास होना है। जैसा कि दारा शुकोह ने ख़ुद सैयदुत-ताइफ़ा हज़रत जुनैद बग़दादी (रह.) के कथन को भी नक़ल किया है, कि 'अर-रूजूअ इलल-बिदाया' यानी शुरुआत की ओर लौटना ही साधक की मंज़िल है।

दारा शुकोह ने अपनी किताब हक़नुमा में उन चरणों का विस्तार से वर्णन किया है जिनका साधक को मक़ाम-ए-वहदत की यात्रा में अनुभव होता है, तथा बताया है कि किस प्रकार एक व्यक्ति अपनी स्वयं की आत्मा, इस ब्रह्मांड तथा अन्य लोकों से होकर अपनी आध्यात्मिक यात्रा करता हुआ तौहीद की उस दुनिया में पहुंच जाता है जहां सभी मतभेद और असहमतियां मिट जाती हैं। उसको वह रोशनी मिल जाती है जिसके माध्यम से वह दुनिया के सभी अंतरों को उनकी वास्तविकता में देख लेता है। यानी उसे एहसास होता है कि फ़र्क़ इज़ाफ़े और ऐतबार के हैं अन्यथा सब कुछ वहदत (ख़ुदा) है। दारा शुकोह ने इस तथ्य का वर्णन इस प्रकार किया है:

> "वही अव्वल है, वही आख़िर है, वही ज़ाहिर है, वही बातिन है। वह दुनिया हर चीज़ की दुनिया है, दूसरी दुनियाएँ उसके लिए ऐसे हैं जैसे दरिया में मौजें या लहरें, या सूरज और ज़र्रे (कण)।"

मक़ाम-ए-अहदीयत (एकत्व की स्थिति) की मंज़िल सूफ़ीवाद के मार्ग पर ऐसी मंज़िल है कि उसका वर्णन करने के लिए शब्द कम पड़ जाते हैं। इसलिए सूफ़िया इन अवलोकनों, घटनाओं और स्थितियों का वर्णन गद्य में नहीं कर पाते, बल्कि शायरी की ज़बान में उन्हें समझाते हैं। दारा शुकोह ने भी इन हालात का वर्णन करने के लिए शायरी का सहारा लिया। उनका एक शेर है:

> माशूक़-ओ-इश्क़-ओ-आशिक़ हर सह यकीस्त ईंजा
> चूँ वस्ल दर न गुंजद हिजराँ चह कार दारद

इसका मतलब यह है कि इस मंज़िल पर आने के बाद माशूक़, इश्क़ और आशिक़ तीनों एक ही हो जाते हैं। जब इस मक़ाम पर मिलने की कोई जगह नहीं है तो फ़िराक़ या जुदाई के लिए जगह कहाँ मिलेगी।

एक और शेर में उन्होंने इस मक़ाम के हालात को कुछ इस तरह बयान किया है:

बादशाही रा-गुज़ार ऐ दोस्त आगाही गुज़ीं
चूँ ब आगाही रसीदी हर चह मी ख़्वाही गुज़ीं

यानी ऐ दोस्त! बादशाहत छोड़ दे और इस हक़ीक़त का इल्म हासिल कर ले। जब इसका इल्म हासिल हो जाएगा तो फिर जो चाहेगा वह तुम को हासिल हो जाएगा।

इस शेर में दारा शुकोह ने अपने दृष्टिकोण से सूफ़ीवाद और नैतिकता के अंतिम लक्ष्य का वर्णन किया है। इस मंज़िल पर पहुंचने के बाद साधक की नज़रों में सारे भेद मिट जाते हैं और जैसा कि दारा शुकोह ने लिखा है, उसे एहसास होता है कि हर साधक ख़ुदा की राह में अपने-अपने तरीक़े से सफ़र करता है। ये रास्ते अलग-अलग होते हुए भी एक ही हैं। उनका उदाहरण पानी की तरह है, अर्थात पानी जिस बर्तन में रहता है, उसका रूप ले लेता है, लेकिन उसकी वास्तविकता वही रहती है।

दारा शुकोह को यह एहसास था कि सफ़र-ए-सुलूक में उनको यह इरफ़ान (ब्रह्मज्ञान) हासिल हुआ था लेकिन वह इस एहसास पर ख़ुद को रोक न सके। इसके बाद उन्होंने अन्य आध्यात्मिक परम्पराओं, विशेषकर हिंदू धर्म और उसमें भी ख़ासतौर पर वेदांत का अध्ययन शुरू किया। इस अध्ययन से उन्हें यह ज्ञात हुआ कि हिंदू धर्म में वेदांत का तरीक़ा भी लगभग वही है जो इस्लाम में सुलूक और तसव्वुफ़ का है। वह मंज़िल जहाँ तक सुलूक का रास्ता ले जाता है, वेदांत भी हमें वहदतुल वुजूद (ब्रह्मवाद) की उसी मंज़िल पर ले जाता है और आख़िरी मंज़िल पर सबको एक ही ज्ञान प्राप्त होता है कि असली हक़ीक़त सिर्फ़ वही एक (ख़ुदा) है और हर जलवा उसी का जलवा है।

दारा शुकोह ने हिंदू धर्म के अपने व्यापक अध्ययन के साथ-साथ तसव्वुफ़ और सुलूक के इन साझा पहलुओं का अध्ययन किया तो पाया कि यह हक़ीक़त जो उनको लंबे संघर्ष के बाद हासिल हुई है, अगर सभी लोग इस बात को समझ लें तो दोनों धर्मों के मतभेद अपने आप मिट जाएँगे और लोग शब्दों की गोरखधंधे से निकलकर हक़ीक़त की दुनिया में क़दम रखेंगे।

यह भावना दारा शुकोह पर इतनी हावी हो गई कि वह इसे सार्वजनिक करने की कोशिश करने लगे और इस भावना से शाही परिवार को ख़ुश करने के लिए उन्होंने मजमउल-बहरैन नामक एक किताब लिखी। इस किताब के माध्यम से उन्होंने यह संदेश दिया कि हिंदू धर्म सागर में बहने वाली एक धारा है और इस्लाम भी सागर में बहने वाली एक धारा है। इन दोनों धाराओं के बीच जो अंतर है वह सिर्फ़ शब्दों का अंतर है। हक़ीक़त में दोनों के बीच कोई अंतर नहीं है। दोनों एक ही रास्ते के मुसाफ़िर हैं।

मजमउल-बहरैन दारा शुकोह की निहायत अहम किताब है, हालांकि यह आम जनता के लिए नहीं लिखी गई थी लेकिन इस किताब के माध्यम से उन्होंने धार्मिक सद्भाव और राष्ट्रीय एकता की मिसाल क़ायम करने की कोशिश की। यह संयोग ही है कि बाद में हालात दारा शुकोह के लिए बहुत अनुकूल साबित नहीं हुए और शासन उसके दुश्मनों के हाथों में चला गया, जिसके कारण उसके विचारों को सरकारी संरक्षण नहीं मिल पाया।

दारा शुकोह का यह प्रयास कोई सबसे पहला प्रयास नहीं था बल्कि इससे पहले भी देश भर में ऐसे कई लोग थे जो भारत में धार्मिक सद्भाव बनाने और हिंदू-मुस्लिम की साझा सभ्यता को बढ़ावा देने के लिए प्रयास कर रहे थे। यह एक तथ्य है कि आज भी मुस्लिम विद्वानों और बुद्धिजीवियों का एक वर्ग ऐसा है जो नफ़रत को ख़त्म करने के लिए निरंतर प्रयासरत है। दारा शुकोह के प्रयासों से कोई असहमत हो सकता है, लेकिन अगर इसे राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देने का उनका प्रयास माना जाए तो यह निश्चित रूप से एक बहुत ही महत्वपूर्ण परंपरा है।

दारा शुकोह के तरीक़े या उनके किसी भी विचार से कोई भी असहमत हो सकता है, और यह एक तथ्य है कि जब भी कोई नया तरीक़ा ईजाद होता है तो उससे असहमति होती है। लेकिन यह भी सच है कि दारा शुकोह की ईमानदारी को नकारा नहीं जा सकता। उन्होंने अपने दौर को देखते हुए इस देश के निर्माण और विकास के लिए जो भी सर्वोत्तम समझा, उसे पूरी ईमानदारी के साथ सबके सामने पेश किया।

वैसे तो दारा शुकोह बचपन से ही सूफ़ीवाद और नैतिकता के मार्ग पर थे और बड़ों के प्रति समर्पण उनके स्वभाव में समाया हुआ था। लेकिन हज़रत मियां मीर(रह.) से मिलने के बाद वे औपचारिक रूप से सूफ़ी संप्रदाय में शामिल हो गए। हज़रत मियां मीर (रह.) क़ादरी संप्रदाय से ताल्लुक रखते थे। दारा शुकोह इस सिलसिले के प्रति इतने समर्पित हो गए कि उन्होंने अपना सरनेम बदलकर क़ादरी रख लिया। लेकिन ऐसा हुआ कि दारा शुकोह हज़रत मियां मीर के प्रति बैअत (किसी पीर के हाथ उसकी शिष्यता ग्रहण करना, दीक्षा) नहीं कर सके। जब वह बैअत लेने के लिए तैयार हुए तो हज़रत मियां मीर का निधन (इंतिक़ाल) हो गया। इसलिए बाद में दारा शुकोह ने हज़रत मियां मीर के एक ख़लीफ़ा मुल्ला शाह बदख़्शी से बैअत ली।

क़ादरी संप्रदाय में बैअत लेने के बाद दारा शुकोह ने ज़िक्र आदि की क़ादरी पद्धति का अभ्यास करना शुरू कर दिया। सूफ़ीवाद में अभ्यास और अनुशासन के माध्यम से कुछ रहस्यों और प्रतीकों को उजागर किया जाता है और साधक को कुछ निश्चित स्थितियों और घटनाओं का सामना करना पड़ता है। दारा शुकोह ने भी इन परिस्थितियों का अनुभव किया था। इनकी वास्तविकता अल्लाह के अलावा किसी को नहीं पता लेकिन जब ये परिस्थितियाँ साधक के सामने आती हैं तो वह उन्हें अपने शब्दों में बयान करता है। दारा शुकोह ने भी अपनी किताब हक़नुमा में इन परिस्थितियों और उनके परिणामस्वरूप प्राप्त स्थानों का उल्लेख किया है।

दारा शुकोह ने जो किताबें लिखीं वे सभी सूफ़ीवाद, अध्यात्म और वेदांत के बारे में थीं। दारा शुकोह के लेखन के विकास का वर्णन तो हर कोई करता है लेकिन कुछ लोग उनके लेखन को तीन कालखंडों में विभाजित करते हैं और कुछ दो कालखंडों में।

दारा शुकोह की रचनाओं के बारे में शुरू में ही बताया जा चुका है कि उनके काम के कई कालखंड हैं, जिनमें से पहला कालखंड उनके वेदांत और हिंदू दर्शन से प्रभावित होने से पहले का है और दूसरा कालखंड उसके बाद का है। हालांकि, अगर हम इसे दूसरे नज़रिए से देखें तो उनके कामों को तीन कालखंडों में बांटा जा सकता है। उनकी कुछ किताबें ऐसी हैं जिनमें उन्होंने अपने से पहले आए सूफ़ियों के रहन-सहन और शिक्षाओं के बारे में लिखा है। ऐसी पुस्तकों में सफ़ीनतुल-औलिया और सकीनतुल-औलिया शामिल हैं। अन्य पुस्तकें वे हैं जिनमें उन्होंने अपनी आध्यात्मिक यात्रा के अनुभवों का वर्णन किया है। ऐसी ही एक किताब है रिसाला हक़नुमा, जिसमें सुलूक के चरणों का वर्णन किया गया है।

उपर्युक्त पुस्तकों के अलावा उनकी सबसे महत्वपूर्ण कृति उनकी शायरी है। उन्होंने अपनी शायरी में इस संसार से परे आध्यात्मिक जगत का पूर्ण वर्णन किया है। उनकी शायरी में अधिकतर इन्हीं विचारों की अभिव्यक्ति होती है। शायद यही वजह है कि एक महान शायर होने के बावजूद वे जनता के बीच इतने लोकप्रिय नहीं हैं क्योंकि जनता ने उनके द्वारा समझाए गए तथ्यों को नहीं समझा। इसके अलावा उनकी एक पत्रिका भी है जिसका नाम है तरीक़तुल-हक़ीक़त, जिसे भी इसी दौर से जुड़ा माना जा सकता है क्योंकि इसमें उन्होंने सूफ़ीवाद की वास्तविकता पर प्रकाश डाला है।

दारा शुकोह की रचनाओं में तीसरे प्रकार की पुस्तकें वे हैं जिनमें उन्होंने हिंदू धर्म में प्रचलित अध्यात्म या वेदांत की परंपरा का अध्ययन किया है तथा उसे इस्लाम से जोड़कर इस्लाम और हिंदू धर्म के बीच एक सेतु बनाने का प्रयास किया है। इस तरह उन्होंने इनको दो धर्मों का संगम बनाया है। इसीलिए उन्होंने अपनी

एक किताब का नाम 'मजमउल-बहरैन' रखा, जिसका अर्थ है समुद्र-संगम। यानी इस किताब के माध्यम से उन्होंने इस्लाम और हिंदू धर्म में आध्यात्मिकता की 'धाराओं' के संगम को प्रस्तुत किया है। ऐसी ही दूसरी किताब है बाबा लाल बैरागी से मुकालमा और उपनिषदों का अनुवाद सिर्रे-अकबर अर्थात सबसे बड़ा राज़ या सबसे बड़ा रहस्य भी इसी श्रृंखला की एक कड़ी है।

इस्लाम के मूल स्रोत क़ुरान और हदीस में भी धार्मिक सद्भाव की बहुत मज़बूत बुनियादें मौजूद हैं। लेकिन यह ध्यान रखना चाहिए कि दारा शुकोह का पूरा प्रयास सूफ़ीवाद और वेदांत के बीच सामंजस्य स्थापित करना है। इस सिलसिले में उन्होंने क़ुरान और हदीस पर ध्यान नहीं दिया है। शायद यह समय की मजबूरी थी जिसकी वजह से दारा शुकोह उस ख़ास दायरे से बाहर न निकल सके।

सुलूक व तसव्वुफ़ और वेदांत का मार्ग अपनी आंखों से देखा जा सकता है, उसे कोई समझा नहीं सकता। यह मार्ग ऐसा अनोखा है कि इस पर चलने वाले ही इसे समझ पाएंगे। यदि वह किसी को अपनी ज़बान में कुछ समझाने की कोशिश करे तो पूरी तरह नहीं समझा सकता। यही कारण है कि कई लोग सूफ़ियों पर आपत्ति जताते हैं और उनके अनुभवों को ग़लत तरीक़े से प्रस्तुत करते हैं। दारा शुकोह के साथ भी यही हुआ। जब उन्होंने अपनी किताब हक़नुमा में अपने अनुभवों का वर्णन किया तो कई लोगों ने उन पर आपत्ति जताई। इसके लिए दारा शुकोह ने हसनातुल-आरिफ़ीन नाम से एक और किताब लिखी। इसमें उन्होंने कहा कि हमने जिन अनुभवों का वर्णन किया है वे अनोखे नहीं हैं बल्कि हमसे पहले भी कई सूफ़ी इन चरणों से गुज़रे हैं और उन्हें अपनी किताबों में दर्ज भी किया है।

सच तो यह है कि दारा शुकोह एक सूफ़ी विद्वान, एक उदार विचारक, ज्ञान और विद्वानों तथा सूफ़ी संतों के प्रति श्रद्धा रखने वाले एक न्याज़मंद (भक्त) थे। वे बादशाह तो नहीं बन पाए लेकिन उनकी शहज़ादगी किसी बादशाह से कम नहीं थी। इसके बावजूद उनकी शहज़ादगी की पूरी कहानी सूफ़ीवाद और वेदांत के साये में गुज़री। उन्होंने इल्म हासिल करने और सूफ़ी संतों के ज्ञान और अनुभवों

से लाभ उठाने के लिए सफ़र किए। सूफ़ियों और साधुओं से मिले, उन्हें अपनी समस्याएं बताईं और उनसे जवाब प्राप्त करके अपने मन को शांत किया।

सूफ़ीवाद और सुलूक के हवाले से दारा शुकोह की ज़िंदगी अधूरी है जब तक कि उसमें उनके आध्यात्मिक गुरु हज़रत मियां मीर का आशीर्वाद शामिल न हो। हज़रत मियां मीर से उनकी अक़ीदत (भक्ति) और मुहब्बत बेमिसाल थी। ख़ुद दारा शुकोह ने हज़रत के प्रति अपनी अक़ीदत की अनोखी घटनाओं के बारे में लिखा है। इसलिए आगे के पन्नों में हज़रत मियां मीर (रह.) के जीवन और दारा शुकोह के प्रति उनकी अक़ीदत के बारे में कुछ पंक्तियाँ लिखी जा रही हैं।

हज़रत मियां मीर क़ादरी की मज़ार पर

रूहानी (आध्यात्मिक) दुनिया एक ऐसी दुनिया है जिसका तर्क और विवेक से ज़्यादा लेना-देना नहीं होता। लेकिन इसकी नींव तर्क और विवेक से ज़्यादा मज़बूत होती हैं। अगर आप इसे देखें, तो तर्क की दुनिया किनारे से लहरों को देखने जैसी है और आध्यात्मिकता की दुनिया ख़ुद लहर बन जाने जैसी है। इसीलिए आध्यात्मिक यात्रा में अक़ीदत (भक्ति) एक आवश्यकता है। दारा शुकोह ने भी सूफ़ीवाद की यात्रा चुनी। इस यात्रा में उनको भी बहुत से लोगों के प्रति अक़ीदत हुई, लेकिन इन सभी व्यक्तित्वों में से उन्हें सबसे अधिक अक़ीदत हज़रत मियां मीर क़ादरी (रह.) से हुई और यह अक़ीदत इतनी बढ़ गई कि जब मियां मीर का इंतिक़ाल हुआ तो दारा शुकोह ने लाहौर गए और वहां हज़रत के शिष्यों और ख़लीफ़ाओं से परिस्थितियों के बारे में पूछताछ करने के बाद उनकी जीवनी लिखी। इस किताब के माध्यम से उन्होंने हज़रत मियां मीर क़ादरी (रह.) के जीवन और उनके सूफ़ी विचारों को इस तरह प्रस्तुत किया कि आज भी उन्हें जीवित देखने जैसा प्रतीत होता है। यदि दारा शुकोह ने यह किताब न लिखी होती तो शायद मियां मीर के हालात इतने विस्तार से उपलब्ध नहीं हो पाते।

दारा शुकोह तो बड़े अक़ीदतमंद (भक्त) थे लेकिन उनके दादा और तत्कालीन बादशाह सुल्तान जहांगीर में बुज़ुर्गों के प्रति उतनी भक्ति और लगाव नहीं था। उन्होंने कई बुज़ुर्गों के साथ ज़्यादतियाँ भी की थीं। हालाँकि, हज़रत मियाँ मीर के प्रति भी उनकी अगाध श्रद्धा थी। शाहजहाँ की भी हज़रत के प्रति बड़ी श्रद्धा थी और वह कई बार हज़रत की मज़ार पर हाज़िर हुए थे।

जहाँगीर और शाहजहाँ के अलावा शाही दरबार के कई अन्य लोग भी हज़रत मियाँ मीर (रह.) के प्रति बड़ी श्रद्धा रखते थे। शाहजहाँ जब भी लाहौर आते तो हज़रत की सेवा में हाज़िर होते थे। ऐसी ही एक मुलाक़ात 7 अप्रैल 1634 को

हुई और इस मौक़े पर नौजवान दारा शुकोह भी अपने पिता के साथ हज़रत की सेवा में हाज़िर हुए। दूसरी बार इस मुलाक़ात के दो दिन बाद फिर हाज़िरी हुई, और तीसरी बार कुछ महीने बाद 18 दिसम्बर 1634 को, जब दारा शुकोह कश्मीर से वापस लाहौर आये थे।

दारा शुकोह हज़रत की सेवा में बहुत कम समय के लिए ही हाज़िर हो पाए थे लेकिन पत्र-व्यवहार जारी रहा। हज़रत की जीवनी से पता चलता है कि हज़रत ने दारा शुकोह को कई पत्र लिखे थे और दारा शुकोह ने भी अपनी ज़रूरत बताते हुए चिट्ठियाँ भेजी थीं। हज़रत की सेवा में उनकी उपस्थिति और पत्र-व्यवहार के माध्यम से उनके लगाव का असर यह हुआ कि दारा शुकोह ने औपचारिक रूप से उनसे बैअत करने का इरादा किया। लेकिन बैअत करने से पहले ही हज़रत मियां मीर का निधन हो गया। इसके बाद दारा शुकोह ने मुर्शिद की तलाश में बहुत प्रयास किए। लेकिन वह संतुष्ट नहीं हुए और अंततः हज़रत मियां मीर के ख़लीफ़ा मुल्ला शाह बदख़्शी से बैअत होकर क़ादरिया सिलसिले में शामिल हो गए।

हज़रत मियां मीर (रह.) के इंतिक़ाल के बाद दारा शुकोह लाहौर आये और यहाँ रहते हुए उन्होंने हज़रत से अक़ीदत में लाहौर शहर का ख़ूब विकास किया और हज़रत मियां मीर की जीवनी लिखने का भी निर्णय लिया। दारा शुकोह ने हज़रत के मुरीदों और ख़लीफ़ाओं से पूछताछ करके हज़रत के बारे में जानकारी एकत्र की। उन्होंने इस किताब के संकलन का कार्य 1642 में 28 वर्ष की आयु में शुरू किया और लगभग 6 वर्षों की कड़ी मेहनत के बाद यह किताब 1648 में पूरी हुई।

दारा शुकोह के पास संसाधनों की कमी नहीं थी। उन्होंने इस किताब को संकलित करने में इन संसाधनों का ख़ूब इस्तेमाल किया है। इसलिए हज़रत के जीवन के बारे में जानने के लिए उन्होंने उनके शिष्यों और उत्तराधिकारियों के अलावा कई लोगों से जानकारी मांगी। ख़ासतौर पर हज़रत के रिश्तेदारों से जानकारी हासिल की। इस किताब में कई स्थानों पर उन लोगों के नाम हैं जिनसे उन्होंने मालूमात हासिल की। मुल्ला शाह बदख़्शी का भी बहुत उल्लेख है। इसी

तरह, हज़रत की जन्मतिथि जानने के लिए उन्होंने हज़रत के सगे भतीजे से संपर्क किया और वह हज़रत की जन्मभूमि सीविस्तान (सिंध का एक गाँव) गए, वहाँ शोध किया और हज़रत की जन्मतिथि लिखी। इसी तरह, उन्होंने हज़रत की तालीम व तर्बियत, राह-ए-सुलूक के चरणों, लाहौर में उनके प्रवास और हज़रत के विचारों के बारे में विभिन्न लोगों से जानकारी प्राप्त की। इस किताब में उन विभिन्न लोगों के हवाले मौजूद हैं जिनसे उन्होंने जानकारी प्राप्त की थी।

दारा शुकोह की यह किताब उच्चस्तरीय शोध का एक नमूना है। उन्होंने यह किताब आधुनिक शोध सिद्धांतों के अनुसार लिखी है। यद्यपि चमत्कार का पहलू सूफ़ीवाद में भी आता है और यह इस किताब में भी है, लेकिन कुल मिलाकर यह किताब शोध-आधारित है और इसमें जीवनी संबंधी विवरण काफ़ी हद तक शोध के बाद दर्ज किए गए हैं। दारा शुकोह ने ख़ुद लिखा है कि इस किताब को लिखने का उनका उद्देश्य कोई कहानी लिखना नहीं है, बल्कि जो हक़ीक़त उनको हासिल हुई उसका वर्णन है। उनका लक्ष्य इन घटनाओं को दर्ज करना है ताकि बाद में इन घटनाओं में सही और ग़लत बातें शामिल न हो जाएं। इसलिए, इस किताब की भूमिका में वे लिखते हैं:

> "अल्हम्दुलिल्लाह, सकीनतुल औलिया नामक यह किताब अपनी पूर्णता पर पहुंच गई है। इसमें हज़रत मियां जीऊ और शेख़ मुल्ला शाह बदख़्शी और अन्य साथियों के जो हालात, घटनाएं और चमत्कार दर्ज किए गए हैं वह निःसंदेह हज़ारवां हिस्सा हैं। इस समूह के अनगिनत चमत्कार लोगों की ज़ुबान पर हैं और बहुत मशहूर भी हैं। उनके मौखिक उल्लेख, भले ही प्रतिष्ठित लोगों द्वारा किए गए हों लेकिन उनमें धीरे-धीरे फ़र्क़ आता जाता है और कुछ ख़ास बातें तो याद भी नहीं रहती हैं। यदि निकट भविष्य के लोग उन पर शोध करके उन्हें लिख लें, तो समय बीतने के साथ-साथ सभी लोग उन्हें वास्तविक घटनाओं के अनुसार लिखेंगे और उनमें किसी भी प्रकार का अंतर नहीं आने पाएगा। इसी वजह से मैंने हज़रत मियां जिऊ (रह.) के साथियों से शोध करने के बाद इन घटनाओं को ध्यानपूर्वक

संकलित किया है। इससे मेरा मक़सद किसी चीज़ को बढ़ा चढ़ाकर पेश करना नहीं है:

क़स्द-ए-शोहरत नबूद-ए-जामी रा
किन हमा नज़्म आबदार नविश्त
बहर-ए-अहबाब बर-सहीफ़ा-ए-दहर
नुक्ता-ए-चंद यादगार नविश्त

(जामी ने यह नज़्म शोहरत पाने के मक़सद से नहीं लिखी थी; उन्होंने विश्व में अपने मित्रों के लिए यादगार स्वरूप कुछ बिन्दु और प्रतीक लिखे थे।)

उम्मीद है कि पाठक न केवल इसके बाहरी पाठ को देखेंगे बल्कि इसके मतलब पर भी विचार करेंगे। अल्लाह तआला अपने इस वर्ग की बरकत से मुझे पाखंड और शैतान के धोखे से आज़ाद करे और मुझे दोस्तों और चाहने वालों में शामिल करे और उनकी मोहब्बत और ख़ुशी से कामयाब बनाए। आमीन।

सद शुक्र कि ई सकीना-ए-मियाँ मीर रह.
बस ख़ूब तमाम शुद, ज़े हुस्न-ए-तहरीर
चूँ हज़रत-ए-मियाँ मीर रा नबवद-सानी
अलबत्ता मरीं सकीना रा नीस्त नज़ीर

(ख़ुदा का बेहद शुक्र है कि हज़रत मियां मीर के बारे में लिखी गई यह किताब सकीनतुल औलिया ख़ूबसूरती से पूरी हो गई। जिस तरह हज़रत मियां मीर के जैसा कोई और नहीं था उसी तरह यह किताब भी बेमिसाल है।)(1)

दारा शुकोह की सभी रचनाओं में एक बात समान है: उन्होंने लेखन का पेशा सिर्फ़ अपने शौक़ को पूरा करने के लिए नहीं अपनाया था बल्कि किताब लिखने का उनका असली उद्देश्य सच की खोज करना और जो कुछ पाया है उसे दर्ज करना है। यह तरीक़ा उनकी सभी किताबों में एक जैसा रहा और यह शैली सकीनतुल औलिया में भी नज़र आती है। यह किताब एक सूफ़ी बुज़ुर्ग की जीवनी है, लेकिन इसका उद्देश्य भी वास्तव में वही तलाश और तलाश में बेचैनी है। जैसा कि दारा शुकोह ने ख़ुद अपनी किताब की भूमिका में लिखा है:

> “इसके बाद यह फ़क़ीर (दारा-शुकोह) अर्ज़ करता है कि जब से मैंने अल्लाह तआला से दुआ की है कि वह अपनी कृपा से मुझे अपने दोस्तों और दोस्तदारों (शुभचिंतकों) में शामिल कर ले, अपने ज्ञान के प्याले से मुझे एक घूँट पिला दे, मेरे दिल की इच्छा पूरी कर दे और मुझे अल्लाह के अलावा किसी और से रिहाई दिला दे, मेरा दिल हमेशा फ़क़ीरों और दरवेशों की तरफ़ आकर्षित होता रहा है, और मैंने अपना समय उनकी खोज में बसर किया है।”(2)

स्वयं दारा शुकोह के अनुसार, जिस आध्यात्मिकता और राह-ए-सुलूक की वह खोज कर रहे हैं, उसमें दरवेशी (दरिद्रता) एक अनिवार्य शर्त है, और दारा शुकोह आख़िरकार एक शहज़ादे थे। वे ग़रीब और अनपढ़ वर्ग से नहीं थे, इसलिए उन्हें अकसर लगता था कि जिस रास्ते पर वे चल रहे हैं उसके तक़ाज़े उनके जीवन की वास्तविकता की तक़ाज़ों से अलग हैं। दारा शुकोह को यह एहसास तो था लेकिन अपनी हैसियत और पद को छोड़ने का साहस उनमें नहीं था, बल्कि वे उससे पूरी तरह जुड़े हुए थे। इसलिए इस एहसास को कम करने के लिए उन्होंने बुज़ुर्गों की कही गई बातों को नक़ल किया है और अपनी किताब में इस उलझन का ज़िक्र भी किया है। एक जगह उन्होंने लिखा है:

> हालाँकि मैं अहले-ज़ाहिर से तअल्लुक़ रखता हूं, परन्तु वास्तव में मैं उनमें से नहीं हूं। बल्कि, मैंने अहले-ज़ाहिर की बेख़बरी और आफ़त को समझ लिया है। हालाँकि मैं दरवेशों से दूर हूं लेकिन मैं उन्हीं में से हूँ। कश्फ़ुल-महजूब के लेखक हज़रत अली हिजवेरी दाता गंज बख़्श कहते हैं कि कोई व्यक्ति अधिक धन और संपत्ति होने से दुनियावी तौर पर अमीर नहीं होता और वह धन और संपत्ति की कमी से ग़रीब नहीं होता। जो व्यक्ति ग़रीबी को बेहतर समझता है, दौलतमंदी उसे दुनियावी नहीं बनने देती, चाहे वह बादशाह ही क्यों न हो। जो व्यक्ति ग़रीबी को नकारता है, वह सांसारिक व्यक्ति है, भले ही वह मुफ़्लिस (दरिद्र) क्यूँ न हो।(3)

सकीनतुल-औलिया बड़ी अच्छी किताब है जो कि अपनी विषय-वस्तु के ऐतबार से रेफ़रेंस बुक की भी हैसियत रखती है। इस किताब के माध्यम से दारा शुकोह ने न केवल हज़रत मियां मीर का इतिहास संकलित किया है बल्कि एक युग को भी जीवंत कर दिया है। शायद अगर दारा शुकोह ने यह किताब नहीं लिखी होती तो यह अध्याय इतने शोध के साथ सामने नहीं आता। इस किताब में हज़रत मियां मीर, उनके महत्वपूर्ण शिष्यों और उत्तराधिकारियों तथा उनकी सेवाओं का व्यापक परिचय भी शामिल है। इस किताब का क्रम इस प्रकार है।

अध्याय एक: हम्द[2], ना’त[3] और सहाबा की प्रशंसा, सकीनतुल औलिया के संकलन का कारण और पीरे-तरीक़त (मुर्शिद) के मार्ग की आवश्यकता।

अध्याय दो: क़ादरिया संप्रदाय की ख़ूबी, अन्य सूफ़ी संप्रदायों का परिचय तथा हज़रत शेख़ अब्दुल क़ादिर जीलानी (रह.) की ख़ूबियों को समर्पित।

अध्याय तीन: इसमें हज़रत मियां मीर की जीवनी, उनके पूर्वज, वतन, बैअत, लाहौर में रहना, उनकी शायरी, उनकी नसीहतें, बादशाहों से संबंध, इंतिक़ाल, हज़रत की आदतें, वस्त्र, हुलिया मुबारक, ग़रीबी, स्थान का परित्याग, नमाज़ अदा करना, तसव्वुफ़ के चरण, अल्लाह और सृष्टि की ओर ध्यान, समाअ (क़व्वाली), परित्याग और अमूर्ति, तथा सूफ़ीवाद के रहस्यों को उजागर करना जैसे विषयों पर रिसर्च के अंदाज़ में गुफ़्तगू की गई है।

अध्याय चार: चमत्कारों के बारे में।

अध्याय पांच: इसमें उन स्थानों का वर्णन है जहां हज़रत मियां मीर अपने जीवनकाल में बैठते थे।

अध्याय छह: यह हज़रत की बहन बीबी जमाल के जीवन से संबंधित है, जो स्वयं एक महान सूफ़ी और दरवेश थीं।

अध्याय सात: यह हज़रत के उन मुरीदों (शिष्यों) के बारे में है जिनका इंतिक़ाल हज़रत मियां मीर की ज़िंदगी में ही हो गया था।

---

[2] जिसमें अल्लाह की तारीफ़ की गई हो।

[3] जिसमें पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल.) की तारीफ़ की गई हो

अध्याय आठ: इसमें हज़रत के मुरीदों, ख़लीफ़ाओं और ख़ादिमों के बारे में विवरण है जो हज़रत के इंतिक़ाल के बाद जीवित रहे। मुल्ला शाह बदख़्शी पर जो हिस्सा है वह ख़ुद एक किताब के बराबर है। शेष ख़लीफ़ाओं के विवरण अपेक्षाकृत संक्षिप्त हैं।

इस किताब में दारा शुकोह ने हज़रत मियां मीर के साथ अपने दादा सुल्तान जहांगीर, पिता सुल्तान शाहजहां और ख़ुद के बीच संबंधों का भी विस्तार से उल्लेख किया है। जहाँगीर के बारे में लिखा है कि सुल्तान जहाँगीर की सूफ़ियों के प्रति अधिक श्रद्धा नहीं थी, बल्कि वह उन्हें कष्ट देते थे, लेकिन मियाँ मीर के प्रति उनकी भी बड़ी श्रद्धा थी। उन्होंने हज़रत मियां मीर के पास एक दूत भेजकर उनसे आगरा आने का अनुरोध किया। मियां मीर ने इसे स्वीकार कर लिया और आगरा जाकर बादशाह से मिले। दारा शुकोह ने सकीनतुल औलिया में इस मुलाक़ात के बारे में लिखा है:

> "बादशाह ने अपनी आदत के विपरीत हज़रत को बहुत सम्मान दिया। कुछ देर तक बादशाह और दरवेश साथ-साथ रहे और बातें होती रहीं। हज़रत ने बादशाह को सलाह दी और बादशाह के दिल पर उसका प्रभाव ऐसा पड़ा कि उसने कहा, मेरे पास जो कुछ भी है, साम्राज्य, गौरव, धन और गहने, मेरी नज़र में पत्थर और राख के बराबर हैं। अगर हज़रत ध्यान दें तो मैं सांसारिक अभिरुचियों को त्याग दूँगा।" हज़रत मियां जीऊ ने कहा: "एक आदर्श सूफ़ी वह होता है जिसकी नज़र में पत्थर और राख समान हों। अब जब तुमने कहा कि तुम्हारी नज़र में पत्थर और मिट्टी एक समान हैं, तो तुम सूफ़ी हो।" बादशाह ने कहा कि, "मियां जिऊ! आप क्यूँ ऐसी दलीलें पेश करके मुझसे पीछा छुड़ाना चाहते हो?" आपने फ़रमाया कि, "अल्लाह की सृष्टि की हिफ़ाज़त के लिए तुम्हारा वजूद लाज़िम है। आपकी न्यायप्रियता की बरकत से ग़रीब लोग इस समय समाज के हित में अपने-अपने कामों में व्यस्त हैं, इसलिए आप जहां हैं, वहीं रहें।

बादशाह ने कहा, “मियां जीऊ, तवज्जोह फ़रमाइए।” हज़रत ने कहा, “अगर तुम अपने जैसा कोई आदमी लोगों की रखवाली के लिए दे दो, तो मैं तुम्हें अपने साथ ले जाऊंगा और तुम्हें व्यस्त रखूंगा।” बादशाह को यह बात बहुत पसंद आई और कहा कुछ फ़रमाइश बताईए। हज़रत ने कहा, "क्या तुम मुझे वह दोगे जो मैं मांगूंगा?" बादशाह ने कहा, "पूरे सम्मान के साथ।" उन्होंने कहा, "मैं बस इतना चाहता हूं कि तुम मुझे छुट्टी दो।" बादशाह ने उन्हें तुरंत पूरे सम्मान के साथ विदा किया और हज़रत विदा होकर लाहौर लौट गये।(4)

दारा शुकोह ने आगे लिखा है कि बादशाह जहांगीर पुनः मिलना चाहते थे, लेकिन संभवतः मुलाक़ात नहीं हुई। हालाँकि उन्होंने जहाँगीर के दो पत्रों का उल्लेख किया है जो उन्होंने हज़रत मियाँ मीर को लिखे थे। एक पत्र में लिखा था:

“यह ईमानदार व्यक्ति एक वास्तविक अनुरोध के बाद हज़रत तक अपनी ईमानदारी पहुंचाने का सौभाग्य प्राप्त कर रहा है। मेरी भी यही इच्छा है कि मुझे हज़रत से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हो।”

दूसरे पत्र में लिखा है:

“हज़रत पीर दस्तगीर की सेवा में, बारगाह-ए-इलाही के न्याज़मंद जहाँगीर की तरफ़ से दुआ के बाद यह अनुरोध है कि दुआ के वक़्त कभी-कभी याद कर लिया करें। यह भी अनुरोध है कि ख़ुदा के बन्दों को अत्याचारी और गुमराह लोगों के हाथों से बचाया जाए। जो कोई भी अपना वादा तोड़ता है, उम्मीद है वह ग़ज़ब-ए-इलाही (ख़ुदा का क़हर) में गिरफ़्तार होगा। आमीन”

जहाँगीर के इंतिक़ाल के बाद शाहजहाँ गद्दी पर बैठे। हज़रत मियाँ मीर के प्रति उनकी भी गहरी श्रद्धा थी। दारा शुकोह ने उल्लेख किया है कि शाहजहाँ ने हज़रत मियाँ मीर से दो बार मुलाक़ात की। वह एक मुलाक़ात के बारे में लिखते हैं:

बादशाह शहाबुद्दीन मुहम्मद शाहजहाँ ने हज़रत मियां जीऊ (रह.) के पास दो बार आकर उनसे मुलाक़ात का सम्मान प्राप्त किया। तो यह फ़क़ीर दोनों महफ़िलों में मौजूद था। इन मुलाक़ातों में कई उपयोगी

> बातें हुईं। आपने कुछ सलाह भी दी। हज़रत मियां जीऊ की संगत का ऐसा प्रभाव था कि बादशाह हमेशा कहते थे कि उन्होंने हज़रत मियां जीऊ जैसा त्याग और वैराग्य का दरवेश कभी नहीं देखा।(5)

शाहजहाँ की दूसरी मुलाक़ात के सम्बन्ध में दारा शुकोह ने दुआ के क़ुबूल के बारे में एक बहुत ही सूक्ष्म बात लिखी है, जो केवल सूफ़ियों को ही हासिल होती है। इसमें लिखा है कि:

> "दूसरी बार जब बादशाह हज़रत के पास गए तो यह फक़ीर और वही लोग उसके साथ थे जो पहली बार उसके साथ आये थे। उनकी बहुत ही सुखद बातचीत हुई। बादशाह ने हज़रत से कहा कि आप कुछ ऐसा बताएं कि दुनिया से दिल हट जाए। उन्होंने कहा कि जब आप कोई नेक काम करें जिससे मुसलमानों के दिल खुश हो जाएं उस वक़्त अपने लिए ख़ुदा से दुआ करें और ख़ुदा से ख़ुदा के सिवा और कुछ न माँगें।"(6)

हज़रत मियां मीर के अपने पिता और दादा से संबंधों का ज़िक्र करने के बाद दारा शुकोह ने अपने ख़ुद के संबंधों का ज़िक्र किया है। दारा शुकोह को हज़रत से ख़ास अक़ीदत (श्रद्धा) थी। जब भी वह हज़रत के यहाँ जाते तो नंगे पैर जाते थे। हज़रत का भी दारा शुकोह से विशेष लगाव था। उन्होंने स्वयं कई जगह पर इसका उल्लेख किया है। एक जगह वे लिखते हैं:

> "हज़रत मियाँ जीऊ (रह.) इस सच्चे और समर्पित शिष्य (दारा शुकोह) के प्रति बहुत मोहब्बत, प्रेम और शफ़क़त दिखाते थे। इसलिए, एक दिन उन्होंने अपने ख़ास दोस्तों और शिष्यों, मुल्ला सॉलेह शफ़ी अहमद, मियाँ हाजी बुनियानी और अन्य लोगों से कहा मैं हमेशा फलां व्यक्ति पर ध्यान देता हूँ। तुम भी हमेशा उस पर ध्यान दो। अगर तुम उससे दूर हो जाओगे तो तुम ख़ुदा से दूर हो जाओगे।"(7)

> एक अन्य अवसर का उल्लेख करते हुए लिखा है कि:

> “एक दिन इस फ़क़ीर का एक रिश्तेदार हज़रत मियां जीऊ (रह.) की सेवा में आया। हज़रत का तरीक़ा यह था कि जो भी उनकी सेवा में आता था, उसका नाम पूछते थे, फिर दुआ करते और उसे विदा करते थे। उस आदमी ने कहा, मैं फलां (दारा शुकोह) का मुलाज़िम हूं। अगर वह मुझसे पूछें कि हज़रत ने क्या कहा तो मैं क्या जवाब दूं? उन्होंने कहा, ठीक है, तुम उनके मुलाज़िम हो तो बैठ जाओ।” उसे अपने क़रीब जगह दे कर यह शेर पढ़ा:

ऐ गुल बतू ख़रसन्दम कि तू बूए कसे दारी

अर्थात् ऐ फूल, मैं तुम्हें देखकर ख़ुश हूं कि तू किसी की यानी महबूब की ख़ुशबू लिए हुए है।

फिर उसने कहा कि मुझे कुछ सिखाईए। हज़रत ने फ़रमाया, हमेशा अपने आक़ा की सूरत को अपने सामने रखकर ध्यान करो।(8)

दारा शुकोह ने अपनी किताब में कई अन्य जगहों पर हज़रत मियां मीर के साथ अपने रिश्तों का ज़िक्र किया है। इस बारे में उन्होंने कहा कि हज़रत से उनकी पहली मुलाक़ात इसलिए हुई क्योंकि एक बार दारा शुकोह गंभीर रूप से बीमार पड़ गए थे। उन्होंने काफ़ी इलाज करवाया लेकिन कोई फ़ायदा नहीं हुआ। हज़रत मियां मीर की प्रसिद्धि सुनकर शाहजहाँ उनके लिए दुआ कराने के इरादे से हज़रत मियां मीर की ख़िदमत में हाज़िर हुए थे। इस घटना का वर्णन करते हुए दारा शुकोह ने लिखा था:

> “एक बार यह फ़क़ीर (दारा शुकोह) बीमार पड़ गया और हकीम (डॉक्टर) उसका इलाज करने में असमर्थ थे। बीमारी चार महीने तक चली। फ़क़ीर की अभी तक हज़रत मियां जीऊ से मुलाक़ात नहीं हुई थी और उन्हें पहचानता भी नहीं था। बादशाह मुझे अपने साथ हज़रत की सेवा में ले गये और पूरी ईमानदारी और विनम्रता के साथ उनसे इस ग़रीब आदमी के स्वास्थ्य और उपचार के लिए दुआ करने का अनुरोध किया। बादशाह ने मेरा हाथ पकड़ लिया और कहा कि हज़रत मियां जीऊ, यह मेरा सबसे बड़ा बेटा है, आपका मोतक़िद

> (भक्त) है। डॉक्टर उसका इलाज करने में असमर्थ हैं, कृपया ध्यान दें। हज़रत ने मेरा हाथ पकड़ा, फिर जिस मिट्टी के कटोरे से उन्होंने स्वयं पानी पिया था उसे पानी से भरकर अपने हाथ में ले लिया। उस पर दुआ पढ़ी और पानी पीने के लिए प्याला इस फ़क़ीर को दिया। पानी पीने के एक हफ़्ते बाद मेरी सारी बीमारियाँ दूर हो गईं और मैं ठीक हो गया। उसी हफ़्ते मैंने किसी को हज़रत के पास पूरी तरह से ठीक होने के लिए दुआ करने के लिए भेजा। हज़रत ने कहा कि इन चार दिनों के दौरान फ़लां समय और फलां वक़्त में, पूरी तरह से शिफ़ा हासिल हो जाएगी। आपके के कहे अनुसार उसी दिन और उसी वक़्त मुझे ख़ुदा ने शिफ़ा-ए-कामिल (मुकम्मल सेहत) अता फ़रमाई।(9)

यह शायद वही मौक़ा है जिसका ज़िक्र उन्होंने शाहजहाँ से अपनी पहली मुलाक़ात के सिलसिले में किया है। इस मुलाक़ात के बाद दारा शुकोह हज़रत मियाँ मीर के प्रति इतनी श्रद्धा रखने लगे थे कि जब भी वे उनसे मिलने जाते तो नंगे पैर ही जाते थे।

दारा शुकोह की हज़रत मियां मीर से दूसरी मुलाक़ात तब हुई जब वह हज़रत के अक़ीदतमंद बन चुके थे। इसलिए यह मुलाक़ात बड़ी श्रद्धा और भक्ति के माहौल में हुई। इसका विवरण देते हुए दारा शुकोह ने स्वयं सकीनतुल औलिया में लिखा है:

> “इस बार इस फ़क़ीर को हज़रत मियां जीऊ (रह.) की सेवा में ईमानदारी और विश्वास हासिल हो चुका था। जब बादशाह और उसके साथी हज़रत के ऊपरी कक्ष में आये तो इस फ़क़ीर ने अपने जूते उतार दिये और पवित्र कक्ष को पवित्र घाटी समझकर नंगे पांव ही सेवा में हाज़िर हुआ। बादशाह से बात करते हुए हज़रत लौंग चबाते और फेंक देते। वहाँ मौजूद कुछ लोगों को यह बात नापसंद लगती, लेकिन यह फ़क़ीर पूरी ईमानदारी और लगन के साथ लौंग इकट्ठा करता और खा लेता। उस समय से इस फ़क़ीर का दिल दुनिया से

> अलग हो गया और मियां जीऊ के प्रति लगाव बढ़ता गया। उनकी बरकत ने मेरे हृदय में गहरी छाप छोड़ी और ऐसा लगा मानो मैंने वह सब प्राप्त कर लिया है जो मुझे प्राप्त करना था। इस बरकत से मुझको बात कहने की ताक़त मिली और मेरा स्वभाव मुनासिब हुआ (यानी मैंने शायरी शुरू कर दी) मुझे उम्मीद है कि क़यामत के दिन मैं उनके गदाओं (भक्तों) में गिना जाऊँगा।"(10)

दारा शुकोह को हज़रत मियां मीर से इतनी अक़ीदत हो गई थी कि इस मुलाक़ात के दौरान उन्होंने अपना सिर हज़रत के क़दमों में रख दिया (शायद घुटनों पर रखा होगा जैसा कि इस तथ्य से प्रमाणित होता है कि हज़रत उनके सिर पर अपना हाथ फेरते रहे)। इस घटना के बारे में लिखा है:

> "जब बादशाह और उनके साथी हज़रत से मिलकर बाहर आये तो यह फ़क़ीर अकेला हज़रत मियां जीऊ (रह.) के पास गया और अपना सिर उनके मुबारक चरणों पर रख दिया। आप अपने हाथों को ख़ुशी से मेरे सिर पर फेरते रहे, गोया किसी फ़क़ीर के सिर को अर्शे-मुअल्ला (सबसे ऊँचा आसमान जहां ख़ुदा का तख़्त है।) पर पहुंचा दिया और बड़ी मेहरबानी फ़रमा कर विदा किया।"(11)

दारा शुकोह बाद में हज़रत मियां मीर (रह.) को पत्र भी भेजते रहते थे। हालाँकि उन्होंने ख़ुद ऐसे पत्रों के बारे में नहीं लिखा है लेकिन उन्होंने एक घटना में इसका उल्लेख किया है जिससे यह साबित होता है कि उनके बीच पत्राचार हुआ था। उन्होंने लिखा है:

> "एक बार हज़रत अखुंद मीरक शेख़, जो मेरे उस्ताद (गुरु) और आलिम व आमिल (विद्वान) हैं और धर्मपरायण एवं सत्यनिष्ठ हैं, ने हज़रत मियां जीऊ (रह.) की सेवा में हाज़िर होने की इच्छा ज़ाहिर की। मैंने एक अर्ज़ी लिखी और उसे हज़रत की ख़िदमत में पेश करने के लिए उन्हें सौंप दिया। हज़रत अख़ुंद ने बताया कि जब मैं हज़रत के पास पहुँचा तो उन्होंने मुझे अपने पास बिठाया और मेरे साथ बहुत अच्छा व्यवहार किया। अर्ज़ी मेरी पगड़ी में थी लेकिन मुझे उसे पेश

करना याद नहीं रहा। उस वक़्त मेरे दिमाग़ में आया कि मैंने हज़रत मियाँ जीऊ का कोई चमत्कार नहीं देखा है। बातचीत के दौरान हज़रत मियाँ जीऊ ने अपना हाथ बढ़ाया और मेरी पगड़ी से अर्ज़ी ले ली और उसे शुरू से आख़िर तक पढ़ा। (यह उस समय की बात है जब हज़रत की नज़र कमज़ोर हो चुकी थी।) उसके बाद उन्होंने कहा कि हम चमत्कार का इज़हार नहीं करना चाहते हैं। इस समूह के लिए चमत्कार प्रकट करना आसान बात है।"(12)

दारा शुकोह ने अपने कुछ ख़्वाबों और सूफ़ी साधना की कुछ घटनाओं के बारे में भी सकीनतुल औलिया में लिखा है। उनका ज़िक्र करने की ज़रूरत नहीं है क्योंकि दारा शुकोह के ज़माने में ऐसी चीज़ों को प्रमाणिक माना जाता था और इसलिए उनका ज़िक्र किताबों में भी होता था। लेकिन आज के दौर में ये बातें प्रामाणिक नहीं मानी जातीं। वैसे भी तसव्वुफ़ और सुलूक धर्म के दायरे में ही आते हैं और धर्म का सार अदृश्य पर विश्वास है।

दारा शुकोह ने हज़रत मियां मीर की तारीफ़ में एक नज़्म भी लिखी है। इस नज़्म के कुछ शेर अस्पष्ट हैं, फिर भी इसके कुछ शेर नीचे दिए गए हैं। नज़्म में है:

दिलो-जानम फ़िदा-ए-मियां मीर   दीदन-ए-हक़ लिक़ा-ए-मियां मीर
आरिफ़ान-ए-जहाँ हमां करदंद   दर तरीक़, इक़्तिदा-ए-मियां मीर
दर रह फ़क़र औलिया-ए-ज़माँ   शर्मसारे ग़िनाए मियां मीर
ग़मे हर दो जहां शुद अज़ दिले ऊ   हर के शुद दर सराए मियां मीर
बेहतरीन अज़ बिलादे-हिंदोस्तान   शहर-ए-लाहौर जाए मियां मीर
बा शूकोह-ए-सिकंदर व दारा
क़ादरी ख़ाक-पाए मियां मीर

(मेरा दिल और मेरी जान मियां मीर पर क़ुर्बान हों, मियां मीर से मिलना हक़ की ज़ियारत करने जैसा है।(नऊज़ुबिल्लाह)
दुनिया के सभी फक़ीर राहे-सुलूक में हज़रत मियां मीर का अनुसरण करते हैं।

ग़रीबी की राह पर चल रहे दुनिया के सारे औलिया मियां मीर की दौलत के सामने शर्मिंदा हैं।

दुनिया का हर दुख उसके दिल से दूर हो जाता है, जो मियां के साए में आ जाता है।

हिंदुस्तान का सबसे अच्छा शहर लाहौर है और वही मियां मीर का मक़ाम है।

सिकंदर और दारा की शान के साथ क़ादरी (दारा शुकोह) मियां मीर के क़दमों की धूल है।(13)

सकीनतुल औलिया के अतिरिक्त दारा शुकोह ने अपनी दूसरी किताब सफ़ीनतुल औलिया में भी हज़रत मियां मीर के बारे में लिखा है तथा उसमें उनके संबंधों का संक्षेप में उल्लेख किया है। इसमें वे लिखते हैं:

"यह ख़ाकसार हज़रत की ख़िदमत में उनके दरबार में हाज़िरी दे आया है। हज़रत इस न्याज़मंद पर विशेष ध्यान देते थे। 20 साल की उम्र में जब मैं एक बीमारी से ग्रस्त हो गया और डॉक्टर भी उसका इलाज करने में असमर्थ थे, तो मेरे पिता शाहजहाँ ने मेरा हाथ पकड़ा और मुझे हज़रत की सेवा में ले गए और कहा कि मेरा एक बड़ा बेटा है और तमाम डॉक्टर उसका इलाज नहीं कर पाए हैं। आप दुआ दें कि अल्लाह तआला उसे शिफ़ा बख़्शे। हज़रत ने एक प्याले में पानी मंगवाया, कुछ पढ़ा, उस पर फूंक मारी और मुझे दे दिया। जब मैंने पानी पिया तो मैं ठीक हो गया। और बीमारी सेहत में तब्दील हो गई। मैंने अपनी किताब सकीनतुल औलिया में हज़रत और उनके उत्तराधिकारियों के हालात के बारे में विस्तार से लिखा है, इसलिए यहां इसी पर अपनी बात ख़त्म करता हूँ।"(14)

हज़रत मियां मीर (रह.) के इंतिक़ाल के बाद दारा शुकोह ने हज़रत के मज़ार के लिए ख़ुद नक़्शा बनवाया और अपनी निगरानी में मज़ार का निर्माण करवाया।(15) शकीलुर्रहमान ने अपनी किताब दारा शुकोह में लिखा है कि मज़ार

पूरी तरह से इस नक़्शे के अनुसार नहीं बन सका लेकिन इसका निर्माण दारा शुकोह ने ही करवाया था।(16)

हज़रत मियां मीर (रह.) से दारा शुकोह की अक़ीदत (भक्ति) की ही बात थी कि जब दारा शुकोह की बीवी नादिरा बानो बेगम का इंतिक़ाल हुआ तो उनका जनाज़ा भी इसी परिसर में दफ़्न करवाया था। उनकी मज़ार आज भी वहाँ महफ़ूज़ है।(17)

दारा शुकोह की इस किताब में कई बातें ऐसी हैं जिनको क़बूल करना मुमकिन नहीं है। ख़ास तौर पर वहदतुल-वुजूदी के विचार समझ से परे हैं। इसी तरह उन्होंने कुछ घटनाओं और क़ुरान की कुछ आयतों की मनमानी तफ़सीर (व्याख्या) भी की है, जैसे कि उन्होंने पैग़म्बर मूसा (सल्ल.) की घटना की जो तफ़सीर की है, वह तफ़सीर का सबसे ख़राब उदाहरण है। इसे किसी भी तरह क़ुबूल नहीं किया जा सकता। दारा शुकोह ने कई अन्य जगहों पर भी क़ुरान की कुछ आयतों के ऐसे मफ़हूम (अर्थ) बयान किए हैं जो क़ाबिल-ए-क़ुबूल नहीं हैं। वैसे इस मामले में दारा शुकोह को तो निर्दोष नहीं ठहराया जा सकता, लेकिन यह भी सच है कि धार्मिक ज्ञान रखने वाले सांसारिक लोगों के कर्म भी इन सबके लिए ज़िम्मेदार हैं। सांसारिक लालच में डूबे कुछ लोगों ने क़ुरान की आयतों के अर्थ को इसी तरह से तोड़-मरोड़ कर पेश किया और यह सिलसिला आज भी जारी है।

हालाँकि उनकी यह किताब सकीनतुल औलिया जीवनी लेखन की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। दारा शुकोह ने इसमें शोध के सिद्धांतों पर बहुत ध्यान दिया है। इसमें प्राचीन प्रामाणिक पुस्तकों के अनेक संदर्भ मिलते हैं। उन्होंने लगभग 25 पुस्तकों के नाम बताये हैं तथा लगभग 50 सूफ़ियों के विचारों का नाम लेकर स्पष्ट वर्णन किया है।

हज़रत मियां मीर (रह.) के हालात के लिए उन्होंने मियां मीर के समकालीनों, ख़ुद्दाम (सेवकों), ख़लीफ़ाओं, मुरीदों और उनके पारिवारिक रिश्तेदारों से जानकारी हासिल की है जो उस दौर के लिए एक असामान्य बात है। हालांकि कहीं परम्पराओं की छानबीन और परीक्षण का पक्ष कमज़ोर है फिर भी एक

नौजवान शहज़ादे की अक़ीदत में डूबी हुई इस कृति के लिए इतनी रियायत तो दी ही जा सकती है। इसलिए यदि हम चमत्कार आदि के बारे में उनके बयानों या उनके रहस्योद्घाटन आदि को नज़रअंदाज कर दें, तो यह किताब महान गुणवत्ता और प्रामाणिकता की है और इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह किताब हज़रत मियां मीर के हालात के बारे में जानकारी का सबसे प्रामाणिक स्रोत है। इस किताब को नज़रअंदाज़ करके मियाँ मीर के हालात लिखे ही नहीं जा सकते।

इस किताब का लेखन-शैली के मामले में भी एक प्रमुख स्थान है जो कि शोध-आधारित और विश्लेषणात्मक है। इसकी शैली ऐसी है कि अगर आज के समय की शोध-पद्धतियों से तुलना की जाए तो इस किताब की शैली आज की शोध-पद्धतियों से कम नहीं होगी।

संदर्भ:

1. दारा शुकोह: सकीनतुल औलिया, उर्दू अनुवाद, मिर्ज़ा मक़बूल बेग बदख़्शानी, नाज़ पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, अदिनांकित, पृ. 286-287
2. As above पेज 9
3. As above, पेज 10-11
4. As above, पेज 26
5. As above, पेज 37
6. As above, पेज 41
7. As above 86
8. As above
9. As above 46
10. As above, पेज 67
11. As above, पेज 41
12. As above, पेज 47
13. दीवान-ए-अशआर, शोध अहमद नबी ख़ान, तक़दीम मुहम्मद हुसैन हैदरयान, रिसर्च सोसाइटी ऑफ पाकिस्तान, लाहौर, 1969, पृ. 114-115
14. दारा शुकोह: सफ़ीनतुल औलिया, नवल किशोर प्रेस, 1882, पृ. 70-73
15. मियां मुहम्मद दीन कलीम क़ादरी: तज़किरा-ए-हज़रत मियां मीर, ज़ियाउल-क़ुरआन प्रकाशन, लाहौर, 1986, पेज 244
16. शकीलुर्रहमान: मुहम्मद दारा शुकोह
17. हज़रत मियां मीर का उल्लेख, (ऊपर उद्धृत) पेज 243

तसव्वुफ़ में निसाई जिहत
दारा शुकोह और सूफ़ी ख़्वातीन

ख़्वातीन के बारे में दारा शुकोह के यहाँ कई बड़े अजूबे मौजूद हैं, उदाहरण के लिए, दारा शुकोह ने अपनी इकलौती बीवी नादिरा बेगम के लिए चित्रों और सुलेखों से बना एक एलबम तैयार किया था और फिर उसे बड़े एहतिमाम से अपनी बीवी को समर्पित करते हुए उन्हें भेंट किया था। यह एलबम लंदन के इंडिया ऑफ़िस लाइब्रेरी में मौजूद है और इस पर कई महान शोधकर्ताओं ने काम किया है। इसके बारे में भूमिका डॉ. सैयद अब्दुल्लाह चुग़ताई ने लिखा था। उसके बाद मौलवी मुहम्मद शफ़ी ने इसके एक हिस्से का विस्तृत परिचय दिया। इस किताब में भी इसका संक्षिप्त परिचय मौजूद है।

दारा शुकोह के व्यक्तित्व की दूसरी विचित्र बात यह है कि इतने महान साम्राज्य का युवराज और अत्यंत शक्तिशाली शहज़ादा होने के बावजूद उसका स्वभाव बिल्कुल भी शाही नहीं था बल्कि फ़क़ीरों जैसा था। वे सूफ़ियों के आस्तानों पर हाज़िरी देते और साधुओं की कुटियों में जा कर रूकते थे। उनकी ताक़त और उनकी शहज़ादगी ने कभी भी तसव्वुफ़ (सूफ़ीवाद) की राह से उनके क़दम नहीं रोके और न इसमें रुकावट बनी।

दारा शुकोह की ज़िंदगी का तीसरा बड़ा कारनामा और उनके व्यक्तित्व का अनोखा पहलू यह है कि उन्होंने मध्यकालीन समाज में ख़्वातीन सूफ़ियों पर भी काम किया है। उन्होंने अपनी किताब सफ़ीनतुल-औलिया में बाक़ायदा एक अध्याय सूफ़ी और बुज़ुर्ग ख़्वातीन के जीवन और शिक्षाओं को समर्पित किया है।

सफ़ीनतुल-औलिया में दारा शुकोह ने चार सौ से अधिक सूफ़ियों की जीवनियाँ लिखी हैं। ये जीवनियाँ केवल शोध के लिए नहीं हैं बल्कि हक़ की तलाश और रूहानियत की जुस्तुजू हैं। इस किताब में मौजूद शख़्सियात दारा शुकोह के लिए भी आईना हैं। वह अपनी रूहानी बेचैनी के लिए इन शख़्सियात की मौजूदगी

में राहे-सुकून और इत्मिनान तलाश करते हैं। दारा शुकोह के लिए यह किताब दरअसल ख़ुद की तलाश का आईना है और इसीलिए इसमें सूफ़ीवाद के हालातों का बहुत ही संक्षेप में वर्णन किया गया है और आम तौर पर ऐसी घटनाओं का ज़िक्र किया गया है जो जीवन के किसी क्रांतिकारी पहलू से जुड़ी हैं। इस किताब में सिर्फ़ प्रसिद्ध सूफ़ियों के हालात ही नहीं हैं, बल्कि दूसरे इमामों और बुज़ुर्गों के हालात भी हैं। अर्थात् दारा शुकोह के लिए रूहानियत की खोज सूफ़ीवाद के दायरे तक सीमित नहीं थी बल्कि उन्होंने सभी प्रकार के महान व्यक्तित्वों में आध्यात्मिक महानता खोजने की कोशिश की। इससे यह भी पता चलता है कि दारा शुकोह के लिए सफ़ीनतुल औलिया वास्तव में सफ़ीना-ए-ज़ात (ख़ुद की ज़िंदगी) का इस्तिआरा (रूपक) है। उन्होंने यह किताब सूफ़ियों के हालात का वर्णन करने के बजाय अपनी रूहानियत को समझने की कोशिश में लिखी थी।

सफ़ीनतुल-औलिया का अंतिम अध्याय ख़्वातीन के बारे में है। इसमें दारा शुकोह ने 38 ख़्वातीन का उल्लेख किया है। उन्होंने इस अध्याय को आगे तीन भागों में विभाजित किया है। पहले भाग में उम्महातुल मोमिनीन (पैग़ंबर मोहम्मद साहब की बीवियाँ) का उल्लेख है। दूसरे भाग में पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल.) की पाक बेटियों का उल्लेख है और तीसरे भाग में प्रसिद्ध सूफ़ी ख़्वातीन का उल्लेख है।

सफ़ीनतुल-औलिया के इस आख़िरी हिस्से यानी सूफ़ी ख़्वातीन के हिस्से में 18 ख़्वातीन का उल्लेख है। इस हिस्से में दारा शुकोह ने एक ओर जहां इन महान हस्तियों के प्रति अपनी गहरी श्रद्धा व्यक्त की है वहीं दूसरी ओर उन्होंने उन आदर्शों और उदाहरणों का भी वर्णन किया है जो उनके व्यक्तित्व आम लोगों के लिए प्रस्तुत करते हैं।

सूफ़ियों, ख़्वातीन सूफ़ियों और पवित्र हस्तियों के प्रति ऐसी प्रतिबद्धता और भक्ति एक महान साम्राज्य के युवराज और शहज़ादे के लिए असामान्य बात है। इसके साथ ही यह भी हक़ीक़त है कि सूफ़ीवाद मूलतः एक सामान्य प्रवृत्ति है, इसलिए एक शहज़ादे की इसमें रुचि और सूफ़ीवाद को अपनी पहचान के रूप में अपनाना भी उसके सार्वजनिक लगाव का परिचायक है।

इस किताब में दारा शुकोह द्वारा वर्णित महान महिलाओं में, अज़वाज-ए-मुतह्हरात (हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) की बीवियाँ) में हज़रत ख़दीजा, हज़रत आयशा, हज़रत ज़ैनब, हज़रत ज़ैनब बिन्त हजश, हज़रत सौदा, हज़रत सफ़िया, हज़रत उम्मे हबीबा, हज़रत हफ़्सा, हज़रत जुवैरिया, हज़रत मैमूना और हज़रत उम्मे सलमा शामिल हैं। पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल.) की चार बेटियों हज़रत फ़ातिमा, हज़रत ज़ैनब, हज़रत रुक़य्या और हज़रत उम्मे कुलसुम (रज़ि.) का उल्लेख किया है। इसके बाद निसा-ए-आरिफ़ात का ज़िक्र है। इसमें हज़रत ज़ायदा, हज़रत शअवाना, हज़रत ग़फ़ीरा, हज़रत राबिया बसरिया, हज़रत नफ़सा, हज़रत फ़ातिमा, हज़रत तोहफ़ा, हज़रत उम्मे ईसा, हज़रत उम्मे मुहम्मद, हज़रत अमीना अल-वाहिद, हज़रत उम्मतुल-इस्लाम, हज़रत मैमूना अल-वाइज़, हज़रत ख़दीजा अल-वाइज़, हज़रत उम्मे मुहम्मद, हज़रत करीमा अल-मुरुज़ियाह, हज़रत फ़ातिमा अल-वाइज़, हज़रत फ़ातिमा और बीबी जमाल (रह.) का ज़िक्र है।

हज़रत बीबी जमाल (रह.) हज़रत मियां मीर क़ादरी (रज़ि.) की बहन थीं। उनका ज़िक्र सकीनतुल-औलिया में भी किया गया है। दोनों की विषय-वस्तु लगभग एक जैसी है इसलिए उनको यहां शामिल नहीं किया गया है।

दारा शुकोह ने अपनी इस किताब सफ़ीनतुल औलिया को काफ़ी शोध और खोजबीन के बाद लिखा था। इस किताब की अधिकांश जानकारी प्रामाणिक और प्रसिद्ध संदर्भों से ली गई है। ख़ासतौर पर उन्होंने अब्दुर्रहमान जामी (रह.) की किताब नफ़हातुल-उन्स को अपना स्रोत माना है जो सूफ़िया का बहुत ही प्रामाणिक उल्लेख है। दारा शुकोह ने ख़्वातीन सूफ़ियों के उल्लेख के लिए भी आम तौर पर नफ़हातुल-उन्स पर ही भरोसा किया है।

सूफ़ीवाद में ख़्वातीन सूफ़ियों की परंपरा शुरू से ही चली आ रही है लेकिन यह परंपरा पहले इतनी प्रसिद्ध नहीं थी। मध्य युग में ख़्वातीन को एक नेता या रोल मॉडल के रूप में नहीं देखा जाता था। लेकिन दारा शुकोह ने ख़्वातीन को रोल मॉडल के रूप में देखा। दारा शुकोह ने इन ख़्वातीन और ज़िंदगी के मैदान में उनकी सेवाओं के बारे में जो घटनाएं बताई हैं, उनसे कम से कम यह अनुमान लगाया

जा सकता है कि दारा शुकोह यह दिखाना चाहते थे कि ख़्वातीन ये कार्य कर सकती हैं।

दारा शुकोह ने जिन ख़्वातीन का ज़िक्र किया है उनमें हज़रत शअवाना (रह.) भी शामिल हैं। हज़रत शअवाना (रह.) के उदाहरण से उन्होंने साबित कर दिया कि औरत भी उपदेश और मार्गदर्शन की सार्वजनिक सेवा कर सकती है। उसका स्थान सिर्फ़ घर की चारदीवारी के भीतर ही नहीं है बल्कि वह रूहानियत (अध्यात्मवाद) की दुनिया में भी अपनी मंज़िल पा सकती है और इस तलाश और खोज की सभी ज़रूरतों को पूरा कर सकती है यानी वह मुरीद और मुर्शिद भी बन सकती है। वह पुरुषों की सभाओं में उपदेश भी दे सकती है और ख़ुद भी उनकी सभाओं में शामिल हो सकती है और अल्लाह के दूसरे बंदे भी उसकी ख़िदमत में हाज़िर हो सकते हैं। सफ़ीनतुल-औलिया में हज़रत शअवाना (रह.) (इंतिक़ाल: 175 हिजरी) के बारे में लिखा है कि:

> "वह अजम (ग़ैर अरब) की रहने वाली थीं। एब्ला (सीरिया का प्राचीन शहर) में रह रही थी। उनकी आवाज़ बहुत सुन्दर थी और वह बहुत अच्छा उपदेश देती थी। ईमान वाले उनकी मजलिस में आते थे। क्योंकि वह बहुत रोती थीं इसलिए लोग उनसे कहते थे कि आप के रोने से ख़तरा है कि आप अंधी न हो जाऐं। वह कहती थीं कि इस दुनिया में अंधा होना आख़िरत के अज़ाब से अंधा होने से बेहतर है। उनका एक मशहूर कथन है कि ऐसा नामुमकिन है कि कोई आँख अपने महबूब के दीदार की ख़्वाहिश रखती हो और उसमें आँसू न हों। हज़रत फ़ुज़ैल बिन अयाज़ भी उनकी ख़िदमत में आते थे और उनसे दुआ के लिए कहते थे। एक बार हज़रत फ़ुज़ैल ने दुआ के लिए कहा तो उन्होंने फ़रमाया कि क्या आपके और ख़ुदा के बीच कोई रिश्ता है कि मैं आपके लिए दुआ करूँ और वह क़बूल हो जाए? हज़रत फ़ुज़ैल यह सुनकर चीख पड़े और बेहोश हो गये।(1)

इसी तरह एक और अज़ीम ख़ातून हज़रत राबिया बसरिया (रह.) हैं। हज़रत राबिया (रह.) की महानता यह है कि जब भी सूफ़ीवाद के संदर्भ में ख़्वातीन का

ज़िक्र होता है तो सबसे पहले उनका ही नाम दिमाग़ में आता है। दारा शुकोह ने उनके बारे में लिखा है कि:

> अबू सुफ़ियान सौरी (महान हदीस विद्वान और न्यायविद) उनसे उनकी समस्याओं के बारे में पूछते थे और उनसे उनके लिए दुआ करने के लिए कहते थे। उनके बारे में लिखा है कि एक आदमी उनके पास आया और उसने देखा कि उनके कपड़े फटे हुए हैं। उसने कहा कि आपके पास बहुत से ख़ादिम हैं। किसी को हुक्म दीजिए कि वह आपको अच्छे कपड़े उपलब्ध कराए। हज़रत राबिया ने जवाब दिया कि मुझे किसी ग़ैर से सवाल करते हुए शर्म आती है।

हज़रत राबिया (रह.) के बारे में यह भी लिखा है कि जब उनके इंतिक़ाल का वक़्त क़रीब आया तो बड़ी संख्या में सूफ़ी और विद्वान उनके चारों ओर एकत्र हुए। कुछ समय बाद हज़रत राबिया ने कहा कि अब आप लोग बाहर चले जाइए, अल्लाह के फ़रिश्ते आ रहे हैं। इसलिए लोग बाहर चले गए। थोड़ी देर बाद अंदर से क़ुरान की एक आयत पढ़ने की आवाज़ आई जिसका मतलब है "ऐ नफ़्स! तू अपने रब की तरफ़ लौट जा, उस हाल में कि अल्लाह तुझसे राज़ी है और तू अल्लाह से राज़ी है। बस मेरे बंदों में दाख़िल हो जा, मेरी जन्नत में दाख़िल हो जा।" जब लोगों ने यह आवाज़ सुनी तो अंदर गए लेकिन तब तक हज़रत राबिया (रह.) का इंतिक़ाल हो चुका था।(2)

हज़रत नफ़सा (रह.) एक महान सूफ़ी और हदीस विद्वान थीं। दारा शुकोह ने उनकी महानता को स्वीकार करते हुए लिखा है कि:

> "वह हदीस की बहुत बड़ी इमाम थीं और उनके ज़माने के बड़े-बड़े उल्मा भी उनसे हदीस पढ़ने जाते थे। फ़िक़्ह के चार इमामों में से एक इमाम शाफ़ई भी जब मिस्र गए, तो उनकी ख़िदमत में हाज़िर हुए और उनसे हदीस पढ़ी। वह मिस्र में इतनी लोकप्रिय हस्ती थीं कि जब उनका इंतिक़ाल हुआ तो उनके शौहर उनकी मैयत (लाश) को मदीना लाकर दफ़नाना चाहते थे लेकिन मिस्र के लोगों ने इकट्ठा होकर उनसे गुज़ारिश की और उन्हें हदीस की इस महान विद्वान को मिस्र में ही

दफ़्न करने के लिए राज़ी कर लिया। उनका इंतिक़ाल 208 हिजरी में रमज़ान के मुबारक (पवित्र) महीने में हुआ था।(3)

इस घटना के बारे में दारा शुकोह के लेख से दो बातें बहुत स्पष्ट हो जाती हैं: पहली, उनके विचार में एक महिला इतनी महान हदीस विद्वान हो सकती है कि उस वक़्त का इमाम भी उनका शागिर्द हो। दूसरे, एक औरत होने के बावजूद वह मर्दों को पढ़ाती थीं और जनता के बीच इतनी लोकप्रिय थीं कि लोगों ने उनके जनाज़े को मिस्र के बाहर नहीं जाने दिया। ऐसा लग रहा था जैसे वह सभी दौर की औरतों के लिए एक मिसाल थीं।

दारा शुकोह ने हज़रत तुहफ़ा (रह.) के हालात बहुत विस्तार से लिखे हैं। हज़रत तुहफ़ा के बारे में लिखा है कि वह हज़रत सिर्री अल-सक़ती के ज़माने में थीं और वह एक ग़ुलाम थीं। इश्क़े-इलाही में दीवानी हो गई थीं, इसलिए उनका मालिक उनको बांधकर रखता था। एक बार सिर्री अल-सक़ती (रह.) वहाँ से गुज़रे, हज़रत सिर्री से उनकी बातचीत हुई। जब हज़रत सिर्री को उनकी महानता का एहसास हुआ तो हज़रत सिर्री (रह.) ने अपने दोस्त के ज़रिए उन्हें ख़रीद कर आज़ाद करना चाहा लेकिन तब तक मालिक को भी उनकी महानता का एहसास हो चुका था इसलिए उसने ख़ुद ही उन्हें आज़ाद कर दिया था और वो उनसे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने अपना घरबार, माल व दौलत सब ग़रीबों में बाँट दिया और ख़ुद भी तसव्वुफ़ का रास्ता अपना लिया।(4)

हज़रत फ़ातिमा निशापुरी (रह.) भी अपने वक़्त की एक महान सूफ़ी और विद्वान थीं। दारा शुकोह ने उनकी तारीफ़ में भी बहुत कुछ लिखा है। वे क़ुरान की बहुत बड़ी विद्वान थीं और तफ़सीर-ए-क़ुरआन का दर्स दिया करती थीं। उनका तफ़सीर बयान करने का अंदाज़ बहुत अच्छा था और उनके तफ़सीर के दर्स (शिक्षण) में पुरुष और औरत दोनों भाग लेते थे।

दाराशुकोह ने लिखा है कि:

> “हज़रत फ़ातिमा निशापुरी मक्का में काबा की ख़ादिम थीं। कभी-कभी वह बैत-उल-मुक़द्दस (यरूशलम की मस्जिदे अक़्सा का दूसरा नाम) की ज़ियारत के लिए भी जाती थीं। सुल्तानुल-आरिफ़िन

हज़रत बायज़ीद उनकी बहुत तारीफ़ करते थे। वह कहते थे कि मैंने उम्र भर में सिर्फ़ एक औरत और एक ही पुरुष को देखा है जो मेरी नज़र में कामिल (जिसने ख़ुदा को पहचान लिया हो) लगे। औरतों में जिसको साहिबे-कमाल (माहिर) पाया, वह फ़ातिमा निशापुरी हैं। किसी जगह पर कोई बात हो तो वह आप पर मुनकशिफ़ (ज़ाहिर) हो जाती थी। मशाइख़ (सूफ़ी लोग) में से किसी की मुलाक़ात हज़रत ज़ुन्नून मिस्री से हुई और उनसे पूछा कि आज का सबसे बड़ा विद्वान कौन है। उन्होंने कहा कि मक्का में फ़ातिमा निशापुर नाम की एक महिला रहती हैं। वह पवित्र क़ुरान की व्याख्या और उसके तथ्यों को इतनी ख़ूबसूरती से समझाती हैं कि मुझे उन पर रश्क (ईर्ष्या) आता है। यानी वह सबसे महान हैं। एक रिवायत के अनुसार एक दिन हज़रत फ़ातिमा ने शेख़ ज़ुन्नून मिस्री को तोहफ़े के रूप में कुछ भेजा। उन्होंने कहा कि औरतों से उपहार और तोहफ़े लेना अपमान और नुक़सान का कारण है। हज़रत फ़ातिमा ने कहा कि कोई सूफ़ी इतना बड़ा नहीं हुआ कि वह कारण और साधन से परे देख सके।"(5)

हज़रत ज़ुन्नून मिस्री (रह.) की बात उस दौर की होगी जब हज़रत फ़ातिमा (रह.) की हैसियत के बारे में उन्हें नहीं बताया गया होगा। बाद में जब उन्हें उनकी हैसियत का पता चला तो वे उनके अक़ीदतमंद (भक्त) हो गए।

दारा शुकोह ने एक ऐसी सूफ़ी महिला का भी ज़िक्र किया है जो क़ानून और न्यायशास्त्र की विशेषज्ञ थी और बाक़ायदा फ़तवे दिया करती थीं। उनका नाम उम्मे ईसा (रह.) था। उनके बारे में लिखा है कि'हज़रत उम्मे ईसा एक बड़ी आरिफ़ा (ब्रह्मज्ञानी) और फ़िक़्ह (न्यायशास्त्र) की विशेषज्ञ थीं। उनका इंतिक़ाल 328 हिजरी में हुआ।'(6)

एक और ख़ातून सूफ़ी का जिनका नाम सतीता (रह.) था, उनका भी ज़िक्र किया है। हज़रत सतीता (रह.) उम्मे-अहद के नाम से मशहूर थीं। वह फ़िक़्ह (इस्लामिक शरिआ) और गणित में माहिर थीं और विरासत (inheritance) के ज्ञान में भी वह बहुत अच्छी थीं। यानी वह दीनी और दुनियावी दोनों ही तरह के ज्ञान में निपुण थीं। उनका इंतिक़ाल 377 हिजरी में हुआ।(7)

दारा शुकोह ने एक और सूफ़ी ख़ातून अमतुल इस्लाम (रह.) के बारे में लिखा है कि वह ख़ुद तो मुहम्मद बिन इस्माईल बिसलानी (रह.) की शागिर्द थीं और हज़रत तनूख़ी, हज़रत ज़ाहिदी और हज़रत अबू अली उनके शागिर्द थे।(8) अर्थात् उन्होंने एक पुरुष से इल्म हासिल किया था और कई पुरुषों ने उनकी सेवा में रह कर इल्म हासिल किया था।

कुछ और सूफ़ी ख़्वातीन के बारे में लिखा है कि वे या तो पुरुष सूफ़ियों की मुरीद थीं या पुरुष सूफ़ी उनके मुरीद थे। इसी प्रकार कुछ सूफ़ी महिलाओं के बारे में लिखा है कि वे सार्वजनिक स्थानों पर भाषण और उपदेश दिया करती थीं। इसी प्रकार कुछ सूफ़ी महिलाओं के बारे में लिखा है कि वे सार्वजनिक स्थानों पर शायरी करती थीं और लोग उन्हें सुनते थे। राहे-सुलूक के माहिरीन और आरिफ़ीन पर इन अशआर से प्रभावित भी होते थे। ये अशआर आमतौर पर इश्क़े-इलाही से भरे होते थे।(9)

दारा शुकोह ने मध्यकालीन समाज में हज़रत शअवाना (रह.) और उस दौर की दूसरी सूफ़ी ख़्वातीन के जो हालात लिखे हैं वह उनकी नज़र में निसाई-जहत (स्त्री आयाम) के नए रास्तों की ओर ले जाते हैं। सूफ़ी महिलाओं की सभा में पुरुष सूफ़ियों की मौजूदगी, उनके उपदेश सुनना, उनकी दुआ की दरख़्वास्त करना और उनकी रचनाओं को लिपिबद्ध करना बिना मेलजोल के नहीं हो सकता और यह मेलजोल दारा शुकोह के दौर में किसी भी जगह पर मुमकिन नहीं था।

दारा शुकोह ने कई ख़्वातीन का ज़िक्र किया है जो अपने वक़्त की महान आलिम (विद्वान) और सूफ़ी थीं, जिनके गुणों और सिद्धियों को सभी ने पहचाना। उनमें से कुछ बाज़ाब्ता मर्दों से मुरीद थीं और कुछ ऐसी थीं जिनके मुरीद भी पुरुष थे। कुछ ऐसी भी थीं जो सिर्फ़ ख़्वातीन के बीच काम करती थीं। दारा शुकोह ने इस किताब में बताया है कि मध्य युग में भी ख़्वातीन की समाज में एक स्थायी भूमिका थी।

सफ़ीनतुल-औलिया में जिस तरह दारा शुकोह ने पैग़म्बर के समय से लेकर अपने समय तक पुरुष हज़रात में रूहानी अज़मत (आध्यात्मिक महानता) की परंपरा के बारे में लिखा है, उसी तरह ख़्वातीन की रूहानी अज़मत की परंपरा को

भी पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल.) के समय से लेकर अपने ज़माने तक लिखा है। उनके विचार में ख़्वातीन की अज़मत सिर्फ़ एक ऐतिहासिक किरदार नहीं था, बल्कि समाज का एक अभिन्न अंग थी और पूरे इतिहास में जारी रही। इस किताब को लिखने के समय भी हज़रत मियां मीर की साथी हज़रत बीबी जमाल इस गिरोह का प्रतिनिधित्व करती थीं।

इस किताब के अंत में दारा शुकोह ने अपने रूहानी मुर्शिद हज़रत मियां मीर क़ादरी की बहन बीबी जमाल का ज़िक्र किया है। हज़रत बीबी जमाल के कुछ चमत्कारों का ही ज़िक्र किया गया है। उनकी ख़िदमात का अधिक उल्लेख नहीं किया गया है। हज़रत बीबी जमाल 1049 हिजरी यानी इस किताब के लिखे जाने तक ज़िंदा थीं।(10)

इस किताब में दारा शुकोह ने एक अहम काम यह किया है कि उन्होंने ज़्यादातर ख़्वातीन के इंतिक़ाल की तारीखें भी दी हैं। इससे उनके समय का निर्धारण करना आसान हो जाता है। अबू अब्दुर्रहमान अल-सलमी ने भी इंतिक़ाल की तारीख़ निर्धारित करने के लिए अधिक प्रयास नहीं किया। हालाँकि, अल्लामा जामी ने कुछ महिलाओं के इंतिक़ाल की तारीखें दी हैं।

दारा शुकोह ने सूफ़ी ख़्वातीन के बारे में लिखकर एक अहम ख़िदमत अंजाम दी है। इस किताब के माध्यम से उन्होंने यह संदेश भी दिया है कि जिस तरह ख़्वातीन के लिए रूहानी अज़मत (आध्यात्मिक प्रतिष्ठा) की खोज एक ऐतिहासिक परंपरा है, यानी पैग़ंबर (सल्ल.) के युग से स्थापित है, उसी तरह उसके अवसर आज भी मौजूद हैं।

संदर्भ:

1. दारा शुकोह: सफीनतुल-औलिया, नवल किशोर, कानपुर द्वारा प्रकाशित, 1882 में प्रकाशित, पेज 207
2. As above
3. As above, पेज 209
4. As above, पृ. 209-212
5. As above, पेज 209
6. As above, पृ. 212-213
7. As above, पेज 213
8. As above
9. As above, पेज 214
10. As above, पेज 215

दारा शुकोह की सूफ़ियाना शायरी

शहज़ादा मुहम्मद दारा शुकोह फ़ारसी के बहुत अच्छे शायर थे। उनके पास शायरी का एक पूरा दीवान (काव्य संग्रह) मौजूद है। इस दीवान में शायरी की कई विधाओं का प्रयोग किया गया है। हालाँकि ऐसा लगता है कि वे स्वभाव से शायर नहीं थे लेकिन जब उन्होंने राहे-सुलूक की ओर रुख़ किया तो इश्क़-ए-हक़ीक़ी (ईश्वर-भक्ति) के विषय ने उनको वह माहौल अता किया कि दारा शुकोह शायरों की श्रेणी में शामिल हो गए। उन्होंने ख़ुद एक बार स्वीकार किया है कि उनमें शायरी के प्रति रुचि हज़रत मियां मीर (रह.) की ख़िदमत में हाज़िर होने के बाद पैदा हुई थी।(1)

दारा शुकोह उच्च कोटि के लेखक थे, जिनमें लेखन की असाधारण प्रतिभा थी। जब उनके शायरी से दिलचस्पी पैदा हुई तो उन्होंने शायरी के मैदान में भी ख़ास मक़ाम हासिल कर लिया।

दारा शुकोह की शायरी पूरी तरह सूफ़ियाना शायरी है। उन्होंने अपनी शायरी में इस्तिआरात (रूपकों) व तलमीहात (संकेतों) का बहुत कम प्रयोग किया है। बल्कि उनकी शायरी का अच्छा ख़ासा हिस्सा सूफ़ी शब्दावली से भरा हुआ है। दारा शुकोह को लोकप्रिय शायरी के विषयों यानी इश्क़ व मोहब्बत की घटनाओं का वर्णन करने में विशेष रुचि नहीं थी। उन्होंने शायरी सिर्फ़ शेर कहने के लिए नहीं की बल्कि अपने व्यक्तिगत अनुभवों, गुणों, खोजों और टिप्पणियों को व्यक्त करने के लिए की थी जिसका वर्णन वे बहुत तार्किक तरीक़े से करते हैं।

दारा शुकोह का व्यक्तित्व बहुत ही असाधारण है, उनके व्यक्तित्व पर बहुत से काम हुए हैं। लेकिन उनकी शायरी पर अभी तक कोई उल्लेखनीय काम नहीं हुआ है। शायरों और लेखकों ने उनकी शायरी पर ध्यान नहीं दिया है क्योंकि

शायरी में असल कमाल तख़य्युल (कल्पना) को ही माना जाता है। इसीलिए किसी शायर ने क्या ख़ूब कहा है:

ज़्यादा है नज़दीक अहले क़यास
सुख़न बोलने से सुख़न का क़यास

दारा शुकोह ने तख़य्युल (कल्पना) के बारे में बहुत ही कम बात की है लेकिन उन्होंने सूफ़ियों के विचारों को साफ़ अल्फ़ाज़ में बयान किया है। उनकी शायरी में तख़य्युल का ज़्यादा इस्तेमाल नहीं है।

प्राचीन इतिहासकारों ने भी दारा शुकोह की शायरी पर ज्यादा चर्चा नहीं की है। कहीं-कहीं छोटी-मोटी टिप्पणियाँ मिलती हैं, जैसे कि आलमगीरी काल के इतिहासकार मुहम्मद अफ़ज़ल सरख़ुश ने लिखा है, "तबई बुलंद व ज़हने रसादाश्त, मतालिब-ए-सूफ़िया रा दर रुबाई व ग़ज़ल मंज़ूम मी कर्द" यानी, शायरी में उनका स्वभाव बहुत ऊँचा और दिमाग़ बहुत तेज़ था। उन्होंने रुबाई और ग़ज़ल में सूफ़ियाना विचारों को बख़ूबी व्यक्त किया है।(2)

मुफ़्ती ग़ुलाम सरवर लाहौरी ने भी दारा शुकोह के ज़बान व बयान की प्रशंसा की है। वे लिखते हैं, "नज़्म व नस्र (पद्य व गद्य) में उनको महारत हासिल थी और अपने विचारों को बड़ी ख़ूबी और आज़ादी के साथ बयान करते थे।"(3)

दारा शुकोह के दीवान का नाम मुफ़्ती ग़ुलाम सरवर ने इक्सीर-ए-आज़म लिखा है। हालांकि, छपे दीवान पर यह नाम नहीं है। मुमकिन है कि असली नाम इक्सीर-ए-आज़म ही रहा हो।(4)

मुहम्मद अफ़ज़ल सरख़ुश के अलावा एक और इतिहासकार आफ़ताब राय लखनवी ने अपनी किताब तज़किरा-ए-रियाज़ुल-आरिफ़ीन में दारा शुकोह का ज़िक्र किया है लेकिन उनकी शायरी पर कोई बात नहीं की है। उन्होंने सिर्फ़ दो शेर पेश किए हैं।(5) उनके अलावा शायद ही किसी दूसरे इतिहासकार ने उनकी शायरी पर समीक्षा की हो। उनके प्रकाशित दीवान के शोधकर्ता ने, जो ख़ुद फ़ारसी के बड़े जानकार हैं, उनकी शायरी पर कोई उल्लेखनीय समीक्षा नहीं की है।

हालाँकि, बिक्रमाजीत हसरत ने उनकी शायरी पर समीक्षा की है। लेकिन उनकी समीक्षा का केंद्र उनकी शायरी नहीं बल्कि उनकी शायरी के विषय हैं।

मौलाना सैयद सबाहुद्दीन अब्दुर्रहमान ने इस दीवान के एक नुस्ख़े (कॉपी) का भी उल्लेख किया है जो शायर के समय की है। इसमें 143 ग़ज़लें और 28 रुबाइयाँ हैं।

मेरे स्वयं के सामने दारा शुकोह का छपा दीवान है। इस दीवान में 215 ग़ज़लें और 148 रुबाइयाँ हैं और यह दीवान 224 पृष्ठों का है।

दारा शुकोह की शायरी में उनके भावनात्मक अनुभवों से ज़्यादा उनके सोच और विचार को जगह मिली है। शायरी में तख़य्युल (कल्पना) अर्थ की नई दुनिया को उजागर करती है लेकिन दारा शुकोह की शायरी में इसका काफ़ी हद तक अभाव है। शायद यही वजह है कि उनकी शायरी में वह प्रवाह नहीं है जो लोकप्रियता के लिए ज़रूरी है।

दारा शुकोह ने अपनी शायरी में वहदतुल-वुजूद (unity of being) के विचारों को व्यक्त किया है। कभी-कभी वह इन अवधारणाओं को इतने स्पष्ट और संक्षिप्त शब्दों में व्यक्त करते हैं कि उनका वर्णन करना मुश्किल हो जाता है। कई स्थानों पर तो ऐसा लगता है जैसे किसी कट्टर वहदतुल-वुजूदी सूफ़ी का कोई अंश बयान कर दिया गया हो।

दारा शुकोह की जो शायरी उपलब्ध है उससे यह बात तो यक़ीन के साथ कही जा सकती है कि उनमें अभिव्यक्ति की असाधारण शक्ति है। उन्होंने सूफ़ीवाद के नाज़ुक मुद्दों को बहुत ही सहज तरीक़े से पिरोया है। यदि वे ग़ज़ल लिखते तो शायद उनका तख़य्युल भी उनका साथ देता और वे अपने वक़्त के मशहूर शायरों में शामिल होते।

दारा शुकोह की शायरी पर टिप्पणी करने से पहले यह उल्लेख करना आवश्यक है कि दारा शुकोह स्वयं एक शायर होने के साथ-साथ एक बड़े सुख़न-फ़हम (शायरी को समझने वाले) भी थे। उनके दरबार में कई शायर थे। शेख़ सरमद और मोहसिन फ़ानी के साथ उनकी दोस्ती का एक कारण सूफ़ीवाद है।

इसके अलावा यह भी सच है कि दोनों ही बहुत अच्छे शायर थे इसलिए भी उनकी दारा शुकोह से दोस्ती थी। उनके अलावा दारा शुकोह के दरबार में एक अहम शायर थे, मिर्ज़ा रज़ी दानिश। बिक्रमाजीत हसरत ने लिखा है कि मिर्ज़ा रज़ी दानिश की एक ग़ज़ल के लिए दारा शुकोह ने एक लाख रुपए का इनाम दिया था।(6) मुहम्मद अफ़ज़ल सरख़ुश ने इसका इज़्हार किया है कि दारा शुकोह रज़ी दानिश का बहुत सम्मान करते थे। रज़ी दानिश का एक शेर है:

ताक रा सैराब कुन ऐ अब्रे नीसाँ दर बहार
क़तरा ता मय मी तवानद शुद चिरा गौहर शवद

(ऐ बरसने वाले बादल, फ़स्ल को सींच, अगर क़तरा शराब हो सकता हो (ख़ुशहाल कर सकता हो), तो फिर गौहर (मोती) क्यों बने?)

दारा शुकोह ने इस शेर को तरह का शेर (नमूने का शेर) बताते हुए इस पर दूसरे शायरों से शेर कहलवाए तथा अपने मिज़ाज के मुताबिक़ ख़ुद भी शेर कहे, जो इस प्रकार है:

सल्तनत सहल अस्त ख़ुद रा आशना-ए-फ़क्र कुन
क़तरा ता दरिया तवानद शुद चेरा गौहर शवद

(अर्थात राज करना आसान काम है। ग़रीबी में ख़ुद को खो दो। अगर क़तरा दरिया बन सकता हो तो गौहर क्यूँ बने?)

मिर्ज़ा रज़ी दानिश के अलावा भी उनके दरबार में कई शायर थे। उनका दरबार लुट गया, इसलिए बाद में उनके अनुयायियों ने उनके साथ अपनी पहचान खो दी होगी। हालाँकि लेखों में शेख़ सरमद और मोहसिन फ़ानी के अलावा मीर मुहम्मद अली माहिर नामक एक शायर का उल्लेख है जो उनके क़रीबी रिश्तेदार थे। वास्तव में दारा शुकोह ने उन्हें मुरीद ख़ाँ की उपाधि भी दी थी। उन्होंने अपने एक शेर में इसका ज़िक्र इस प्रकार किया है:

कर्दी बारादत इंतिख़ाबम
बख़्शी मुरीद ख़ाँ ख़िताबम

(आपने मुरीदी के लिए मुझे चुना और मेरा नाम मुरीद ख़ाँ रख दिया।)

सरख़ुश ने मीर मुहम्मद अली माहिर की प्रशंसा में असाधारण लेक लिखे हैं। दारा शुकोह के लेखक चंद्रभान बरहमन ने उनकी क़िता-ए-तारीख़-ए-वफ़ात भी लिखी थी।(7)

मुग़ल दरबार में शायरों की कभी कमी नहीं रही। भला दारा शुकोह के यहाँ क्यों रहती? दारा शुकोह तो उस वक़्त ख़ुद भी शायरी के एक विषय थे। उनके बारे में, उनके बच्चों के बारे में और दारा शुकोह द्वारा बनवाई गई इमारतों के बारे में बहुत से क़सीदे मौजूद हैं, इसलिए उनके दरबार में कई शायर थे और इन सबसे यह साबित होता है कि दारा शुकोह को भी शायरी और शायरों से लगाव था।

जब दारा शुकोह ख़ुद भी शायरी करने लगे तो उनके बाद आने वाले शायरों की तादाद में इज़ाफ़ा हुआ होगा। जहां तक दारा शुकोह की ख़ुद की शायरी का सवाल है तो जैसा कि पहले ही ज़िक्र हुआ है, उनकी शायरी का एक बड़ा हिस्सा सूफ़ी विचारों की रचना है।

दारा शुकोह के क़सीदे बहुत उम्दा हैं जो कि ग़ज़ल की शक्ल में हैं, हालाँकि उनमें वहदतुल-वुजूद का सार समाहित है, फिर भी उनमें ख़ुदा की बड़ाई का बहुत दिलचस्प तरीक़े से वर्णन है। उनकी एक ग़ज़ल है:

ऐ तू अंदर हर जमाली रू-नुमा वे तू अंदर हर लिबासी आशना
ऐ बहर जा हुस्ने ख़ूबत जलवा गर ऐ फ़तादे शोर हुसनत जा-ब-जा
आँ के हर कस दीद सूए रोऐ तू चश्मे ख़ुद पाशीद ऊ अज़ मा सिवा
हर क़द्र लब बस्ता अम अज़ गुफ़्तगू हस्त आवाज़े तू अंदर हर सदा
हर कि फ़ानी गश्त अंदर ज़ाते तू ज़ाते ख़ुद रा याफ़्त दाएम दर बक़ा
हस्ती अंदर ज़ाते यकताई जहाँ अज़ सिफ़त लेकिन शुदी हर जा जुदा

क़ादरी जुज़ तू नदानद हेच चीज़
अव्वल-ओ-आख़िर हमी दानद तुरा

ऐ वह ज़ात (ख़ुदा) कि हर जमाल में तेरा ही जलवा है और हर लिबास में तेरा ही रूप है।

ऐ वह ज़ात कि हर जगह तेरा ही हुस्न नज़र आता है और ऐ ज़ात जिसके हुस्न का ज़िक्र हर जगह है।

ऐ वह ज़ात कि जिस किसी ने भी तेरा जलवा देख लिया फिर वह हर तरफ़ से नज़र फेर कर तेरा ही हो जाता है।

मैंने जिस क़द्र अपने होंठ बंद रखे कि बात न कर सकूँ लेकिन तेरी आवाज़ हर आवाज़ के अंदर मौजूद है।

ऐ वह ज़ात कि जो कोई भी तेरी ज़ात के अंदर गुम हो गया उसने अपनी ज़ात को हमेशा बक़ा के अंदर पा लिया।

तू अपने एक होने में हर प्रकार से शुद्ध है, किन्तु अपनी पवित्रता की स्थिति में हर जगह जुदा है।

यह क़ादरी (दारा शुकोह) तेरे सिवा किसी चीज़ को नहीं जानता। सबसे पहले और सबसे आख़िर तुझी को जानता है।

हम्दिया शायरी उनके यहाँ बहुत है और ऐसे अर्थ और अवधारणाएँ उनकी शायरी में भरपूर हैं। दरअसल, दारा शुकोह की शायरी पढ़ते हुए हमेशा यही एहसास होता है कि जो अभी कही गई है अगले शेर में भी वही बात है सिर्फ़ भाव अलग हैं।

सूफ़ियों के विचारों में उन्होंने वहदतुल वुजूद (Unity of Being) की अवधारणा को सबसे अधिक विस्तार से बताया है। मिसाल के लिए दारा शुकोह का एक मशहूर शेर है:

हर सू के नज़र कुनी ओस्त
वज्हुल्लाह अयानस्त रू-बरू रा

(जिस तरफ भी देखो, सिर्फ़ वही है, रूबरू के लिए अल्लाह की ज़ात पूरी तरह स्पष्ट है।)

एक रुबाई (चौपाई) में तौहीद-ए-वुजूदी को इस तरह बयान किया है:

तौहीद ख़मोशी अस्त व फ़िक्र अस्त मदाम बहस आमद वशुद ज़ दस्ते तौहीद तमाम
यक गुफ़्तन तू ऐन दूई साबित कर्द तौहीद रवद ज़ नुक़्ता चूँ गीरी नाम

(तौहीद ख़ामोशी और निरंतर चिंतन का नाम है। जहाँ बहस शुरू हुई, तो तौहीद का मक़ाम हाथ से निकल जाता है।)

तुझको एक कहना भी दो साबित करना हो गया इसलिए जब भी नाम लोगे तो तौहीद हाथ से निकल जाएगी।)

ज़ाहिर है, ये विचार किसी आंतरिक विचार की अभिव्यक्ति नहीं हैं, बल्कि अन्य सूफ़ी शायरों और सूफ़ियों के विचार हैं जो वहदतुल वुजूद को हक़ीक़त मानते हैं, जिनको दारा शुकोह ने नज़्म की शक्ल में लिखा है। उनकी इसी तरह की एक ग़ज़ल यह है:

नीस्त चीज़ी बजुज़ ख़ुदा मौजूद ख़्वाह अंदर ख़िफ़ा व ख़्वाह शुहूद
पस न गोयद करा तवाँ गुफ़्तन गरचे काफ़िर बुवद व गरचे जहूद
हेच जाए रुख़-ए-निगारे तू दर नज़र आमदत कि ख़ुश नमूद
हर बदी कू तुरा बे-चश्म आयद बदी ख़ुद बदाँ के ख़्वाहद बूद
ता बदी हाए ख़ुद न साज़ी दूर
के बयाई चूँ क़ादरी मक़सूद

(ख़ुदा के सिवा कोई चीज़ मौजूद नहीं है, न बाहरी रूप में, न आंतरिक रूप में।

इसलिए वह कुछ नहीं कह सकता चाहे वह काफ़िर हो या मुनकिर।

किसी भी जगह तेरा हसीन चेहरा नज़र आ जाए तो ख़ुश कर देता है।

जो भी बुराई तुमको अपनी आँख से नज़र आती है, बुराई तुम ही तो कहते हो (अन्यथा वह बुराई नहीं है)।

जब तक अपनी बुराइयों को दूर नहीं कर लोगे तब तक अपने लक्ष्य तक कैसे पहुंच सकते हो।

एक अन्य ग़ज़ल में इसी अर्थ को दूसरे ढंग से व्यक्त किया गया है:

बे हिजाब व बे नक़ाब अस्त आफ़ताब अब्रो-हिम्मत मर तोरा गश्ता नक़ाब
चीज़ दीगर के हिजाबे ऊ शूद रूए ख़ुद रा ख़ुद मगर बाशुद हिजाब
हर चे बीनी ग़ैर अज़ु आँ वह्मे तुस्त ग़ैर अज़ु दादे वुजूदी चूँ सराब
बहरे ला-महदूद ज़ाते वाहिद अस्त मनो-तू चूँ नक़्शो-चूँ मौजी बर आब

क़ादरी ता ऐने दरिया गश्ता अस्त
गश्ता फ़ारिग़ अज़ अज़ाब व अज़ सवाब

सूरज तो बेहिजाब और बेनक़ाब सामने है, तेरे लिए तेरा हौसला और बादल नक़ाब बन जाते हैं।

कोई दूसरी चीज़ उसके लिए हिजाब कैसे बन सकती है, अपने चेहरे के लिए अपना चेहरा ही हिजाब होता है कहीं।

इसके सिवा तुम जो कुछ भी देखते हो वह सिर्फ़ तुम्हारा वहम है। इसके सिवा जो भी वजूद है वह सिर्फ़ भ्रम है।

वह एक ऐसा महासागर है जिसका कोई किनारा नहीं है, आप और मैं पानी की सतह पर एक पैटर्न या पानी की लहर की तरह हैं।

क़ादरी (दारा शुकोह) जब ख़ुद ही दरिया बन गया तो अज़ाब व सवाब से फ़ारिग़ हो बैठा।

दारा शुकोह वहदतुल वुजूद को अभिव्यक्त करने के लिए विभिन्न शैली अपनाते हैं। उनकी शैलियों को एक जगह समेटना संभव नहीं है। उदाहरण के लिए एक जगह वे ख़ुद ही अस्तित्व का अर्थ समझाते हैं:

ख़ेश्तन रा जुदा नमी बीनम लेक ख़ुद रा ख़ुदा नमी बीनम
क़तरा रा निस्बती कि बा बहर अस्त बेश्तर ज़ीं रवा नमी बीनम

(हम ख़ुद को उससे अलग भी नहीं देखते और न यह ख़ुद को ख़ुदा समझते हैं।

हम ख़ुद को सागर की तुलना में एक बूँद से अधिक नहीं समझते।

वहदतुल-वुजूदी के विचारों के अलावा भी दारा शुकोह की शायरी आमतौर पर किसी न किसी हद तक मज़हब से प्रभावित होती हैं। उदाहरण के लिए सूफ़ियों के इश्क़ का एक प्रकार जो इश्क़-ए-ख़ालिस या पवित्र इश्क़ कहलाता है और इसका श्रेय हज़रत राबिया बसरिया (रह.) को जाता है। इस प्रकार के सच्चे इश्क़ का वर्णन हज़रत राबिया ने किया है जिसका अर्थ है कि व्यक्ति को अज़ाब व सवाब (दंड या पुरस्कार) की परवाह किए बिना इबादत करनी चाहिए। दारा शुकोह ने इसको शायरी में इस प्रकार वर्णित किया है:

हर के बगुज़ाश्ता सवाब व अज़ाब दर जहाँ अस्त ऊ दर कमयाब
अज़ हुबाबी कि नख़वत अंदर ऊसत अज़ तवाज़ो निको बुवद गरदाब
आँ बेरूँ मी नुमायद अज़ दरिया ई फ़रो मी रवद मयाना आब
ज़ीं दो बाला चूँ क़ादरी बाशद
हर करा गश्ता अस्त फ़तहे बाब

(जिसने अज़ाब व सवाब के लालच को छोड़ दिया वह दुनिया में एक नायाब मोती की तरह है।
भँवर की विनम्रता पानी के बुलबुले के अहंकार से बेहतर है।
क्योंकि बुलबुले का अहंकार उसे पानी से बाहर धकेल देता है, और भँवर की विनम्रता उसे गहराई में ले जाती है।
लेकिन जो लोग क़ादरी की तरह इन दोनों से ऊपर उठ जाते हैं, उनके लिए सफलता के दरवाज़े खुल जाते हैं।)

वहदतुल वुजूद के तसव्वुर (अवधारणा) से क़रीब-क़रीब इंसान-ए-कामिल (आदर्श मानव) की अवधारणा है। बल्कि, यह अवधारणा वहदतुल वुजूद से ही अस्तित्व में आती है क्योंकि एक बिंदु पर वहदतुल वुजूद में विश्वास करने का लाज़मी नतीजा इंसान-ए-कामिल को मानना ही होता है। दारा शुकोह भी इस अवधारणा में विश्वास करते थे। उदाहरण के लिए यहाँ उनके कुछ अशआर हैं:

आदमी क़द्र-ए-ख़ेश मी दानी कि तुई गंज सर-ए-पिन्हानी
दिले तू अर्श व कुर्सी व लौह अस्त कांदराँ हस्त इल्म-ए-रब्बानी

(ऐ इंसान अपनी क़द्र पहचान, चूँकि तू ही तो छुपा हुआ ख़ज़ाना है।
तेरा दिल अर्श और कुर्सी (ईश्वरीय सिंहासन) और लौह-ए-महफ़ूज़ है। इसी के अंदर इल्मे रब्बानी है।)

सूफ़ीवाद और सूफ़ियाना विचारों के अलावा दारा शुकोह की शायरी में कभी-कभी जीवन की समस्याओं पर भी चर्चा की गई है। मिसाल के लिए एक जगह उन्होंने एक लेख लिखा है कि एक इंसान को इस दुनिया में कैसे ज़िंदगी बसर करनी चाहिए। निस्संदेह, उन्होंने यह बातचीत बड़े ख़ूबसूरत अंदाज़ में की है और

यह बहुत मूल्यवान है और यह एक बड़े आलिम और सूफ़ी की ज़बान से है, इसलिए उनकी शैली और अभिव्यक्ति ने बड़ा अर्थ प्राप्त कर लिया है। उनकी बातचीत का सार यही है कि इस दुनिया में इंसान को हल्का रहना चाहिए और ख़ुद पर ज़्यादा बोझ नहीं डालना चाहिए। ज़िंदगी जितनी हल्की होगी उतनी आसान गुज़रेगी। इस बात को दारा शुकोह ने बहुत ही ख़ूबसूरती से इस इस नज़्म में बयान किया है।

मुसाफ़िर हर क़दर बाशद सुबुकसार   न्याबद दर सफ़र तस्दीअ व आज़ार
तू हम अंदर जहाँ हस्ती मुसाफ़िर   यक़ीं मी दाँ अगर हस्ती तू हुशियार
बक़द्रे माल बाशद सर गरानी   बक़द्रे पेच बाशद बारे दस्तार
ख़ुदी रा नीज़ अज़ सर दूर गर्दान   कि हम बार अस्त बारे वहम व पिंदार
तू ता बाशी ब दुनिया बाश आज़ाद
तोरा चूँ क़ादरी कर्दा ख़बरदार

(मुसाफ़िर जितना हल्का रहेगा, सफ़र के दौरान दूसरी और परेशानियों से उतना ही सुरक्षित रहेगा।
तू भी इस दुनिया में एक मुसाफ़िर की तरह हैं। यक़ीन जानो अगर तुम समझदार हो कि जितना अधिक धन और संपत्ति होगी, उतनी ही अधिक परेशानी होगी, जैसे किसी पगड़ी में जितने अधिक पेंच होते हैं, वह उतनी ही अधिक बोझिल होती है।
इसलिए अपने अहंकार से दूर रहो, क्योंकि वहम और भ्रांति भी बोझ ही हैं।
इसलिए जब तक तुम इस दुनिया में हो, आज़ाद रहो, क्योंकि क़ादरी (दारा शुकोह) इसी बात से तुम्हें सावधान कर रहा है।

दारा शुकोह ने भी जीवन में कर्म के महत्व को बहुत ख़ूबसूरती से बयान किया है:

ख़्वाही के शवी दाख़िले अरबाबे नज़र   अज़ क़ाल ब हाल बायदत कर्द गुज़र
अज़ गुफ़्तने तौहीद मुवह्हिद न-शवी   शीरीं न-शवद दहन ज़ नामे शकर

(अगर तुम चाहते हो कि अरबाब-ए-नज़र में दाख़िल हो जाओ तो
कहने के बजाय कर्म की राह पर चलो।
तौहीद का लफ़्ज़ कहने से कोई व्यक्ति एकेश्वरवादी नहीं हो जाता,
जैसे शक्कर कहने से मुँह मीठा नहीं होता।

सूफ़ीवाद के मार्ग में मुर्शिद (गुरु) का बहुत महत्व है। अगर एक कामिल मुर्शिद मिल जाए तो वर्षों की दूरी कुछ ही क्षणों में तय की जा सकती है। हक़ीक़त यह है कि मुर्शिद ही वास्तव में राहे-सुलूक की कुंजी होते हैं। इसलिए मुर्शिद भक्ति का केन्द्र बन जाते हैं। दारा शुकोह को अपने मुर्शिद और उनके अनुयायियों के प्रति भी अपार श्रद्धा थी। दारा शुकोह ने अपनी शायरी में इस भक्ति को व्यक्त भी किया है। उनकी एक नज़्म है:

आरिफ़े दिल व जाने तू मुज़ैयन साज़द   ख़ारे के कुनद बजुश गुलशन साज़द
कामिल हमा रा अज़ नक़्से बिरूँ आरद   यक शमा हज़ार शमा रा रोशन साज़द

(आरिफ़ (सूफ़ी) तेरे दिल और जान को ज़ीनत अता करता है, वह
जो कांटा निकालता है उसकी जगह गुलशन बना देता है।
जो कामिल होता है वह सबकी कमियों और दोषों को दूर कर देता है,
जैसे एक शमा से हज़ारों शमा जलाई जा सकती है।)

इसी तरह सूफ़िया की अहमियत के बारे में लिखा है:

दिले सूफ़ी सफ़ाई बाशद व बस   जुमला रा पेशवाई बाशद व बस
दिले सूफ़ी ख़ुदाई राह बेनुमा यद   हम चूँ क़िब्ला नुमाए बाशद व बस
सूफ़ी अज़ जा व अज़ मकान पाक अस्त   ऊ मुनज़्ज़ा ज़ जाए बाशद व बस
दिले सूफ़ी यक़ीन ज़ आबो गिल अस्त   दिले सूफ़ी ख़ुदाई बाशद व बस
हिम्मते सूफ़ी अज़ दो कोन अफ़्ज़ूँ अस्त   आसमाँ ज़ेरे पाए बाशद व बस
क़ादरी हम ज़ सूफ़ीयान-ए-गरदीद
ग़ैर सूफ़ी बलाए बाशद व बस

(सूफ़ी का दिल तो सफ़ाई के लिए होता है और बस, उसका काम
तो सबकी रहनुमाई (मार्गदर्शन) करना होता है और बस।

सूफ़ी का दिल अल्लाह का रास्ता दिखाता है, वह तो क़िबला की तरह है होता है और बस।

सूफ़ी मक़ाम (पद) और क़याम (निवास) से बुलंद होता है, वह अपने निश्चित निवास के कारण भी पाक (पवित्र) हो जाता है, और बस।

देखने में सूफ़ी का दिल भी पानी और मिट्टी से ही बना होता है लेकिन हक़ीक़त यह है कि एक सूफ़ी का दिल ख़ुदाई (दिव्य) होता है और बस।

सूफ़ी की हिम्मत दोनों जहानों (लोकों) से ज़्यादा है, आसमान उसके क़दमों की धूल होता है और बस।

क़ादरी भी सूफ़ीयों में शामिल हो गया है, जो सूफ़ी न हो तो वह सिर्फ़ बला (आपदा) और मुसीबत होता है और बस।)

दारा शुकोह के मुर्शिद लाहौर यानी पंजाब के निवासी थे। इसलिए दारा शुकोह को पंजाब और ख़ासकर लाहौर से बहुत लगाव था। लाहौर के बारे में उन्होंने एक शेर में कहा:

बूद आबाद दाएम शहरे लाहौर
वबा व क़हत अज़ीं जा दूर दारद

(अर्थात् लाहौर शहर हमेशा आबाद रहे और अल्लाह तआला इस शहर से वबा (महामारी) और क़हत (अकाल) को हमेशा दूर रखे।)

इस अक़ीदत की वजह से उनको पूरे पंजाब से अक़ीदत हो गई। इसलिए पंजाब के बारे में कहा है कि:

इश्क़े पंजाबम नमूदा बेक़रार ज़ाँ के नक़्शे दोस्त दर पंजाब हस्त
काबा-ए-मन हज़रते लाहौर दाँ सज्दए मन सूए आँ मेहराब हस्त
क़ादरी रा काबा दारापूर शुद कांदराँ बिसयार फ़तहे बाब हस्त

पंजाब के इश्क़ ने मुझको बेक़रार कर दिया है, इसलिए कि दोस्त का अक्स (प्रतिबिंब) और नक़्श (छवि) पंजाब में है।

मेरा काबा तो लाहौर शरीफ़ को समझ मेरा सजदा उसी की मेहराब की तरफ़ होता है।

दारापुर (हज़रत मियां मीर का वतन) ही क़ादरी के लिए काबा है,
इसके भीतर ही अच्छाई के दरवाज़े खुले हैं।

दारा शुकोह को क़ादरी सिलसिले (संप्रदाय) से बड़ी अक़ीदत थी। उन्होंने इस सिलसिले के संस्थापक हज़रत शेख़ अब्दुल क़ादिर जिलानी (रह.) तथा इसी सिलसिले के अन्य सूफ़ियों की प्रशंसा में भी शायरी लिखी है। उन्होंने अपने मुर्शिद हज़रत मियाँ क़ादरी (रह.) के बारे में एक नज़्म लिखी थी जो कि ग़ज़ल की शक्ल में थी। उनके कुछ शेर इस तरह हैं:

दिलो जानम फ़िदाए मियाँ मीर   दीदने हक़ लिक़ाए मियाँ मीर
आरिफ़ाने जहाँ हमा करदंद   दरतरीक़, इक़्तिदाए मियाँ मीर
दर रहे फ़क्र औलियाए ज़माँ   शर्मसारे ग़िनाए मियाँ मीर
ग़मे हर दो जहाँ शुद अज़ दिले ऊ   हर के शुद दर सराए मियाँ मीर
बेहतरीन दर बिलादे हिंदुस्तान   शहरे लाहौर जाए मियाँ मीर
बा शुकोह व सिकंदर व दारा
क़ादरी ख़ाकपाए मियाँ मीर

(मेरे दिल और जान मियां मीर पर क़ुर्बान हों, मियां मीर से मुलाक़ात करना ऐसा है जैसे हक़ की ज़ियारत करना। (नऊज़ुबिल्लाह)

दुनिया के सभी सूफ़ी राहे-सुलूक में हज़रत मियां मीर का अनुसरण करते हैं।

ग़रीबी की राह पर चल रहे दुनिया के सारे औलिया मियां मीर की दौलत के सामने शर्मिंदा हैं।

दुनिया का हर ग़म उसके दिल से दूर हो जाता है, जो मियां के साए में आ जाता है।

हिंदुस्तान का सबसे अच्छा शहर लाहौर है और वही मियां मीर का मक़ाम है।

सिकंदर और दारा की शान व शौकत के साथ क़ादरी (दारा शुकोह) मियां मीर के क़दमों की धूल है।

लाहौर में एक बुज़ुर्ग हज़रत ईशाँ लाहौरी (रह.) थे। उनका नाम मुहम्मद उर्फ़ ख़्वाजा ख़ावंद महमूद था। उन्होंने कश्मीर में नक़्शबंदिया सिलसिले का प्रचार किया था लेकिन कुछ राजनीतिक कारणों से उन्हें आधिकारिक तौर पर लाहौर में रहना अनिवार्य कर दिया गया था। उनका इंतिक़ाल 1052 में हुआ था। उनके इंतिक़ाल के बाद दारा शुकोह ने उनके लिए एक मर्सिया (शोकगीत) लिखा। यह मर्सिया भी एक ऐतिहासिक रचना है। इसके शेर इस प्रकार हैं:

चूँ नबाशद आसमाँ बा चश्मे तर चूँ सफ़र फ़रमूद शेख़े बहर ओर बर
शेख़ हफ़्त अक़लीम ताऊसे हरम पेश्वाए औलियाए मोतबर
फ़क्रे ऊ शागिर्द फ़क्रे अहमदी बूद कम तर पेशे ऊ अज़ ख़ाके ज़र
मिस्ले ऊ ज़ाएर नबाशद काबा रा हम चुनाँ ज़ाएर नबूदे पेश तर
रोज़ो शब मी गश्त बर गिर्दे हरम काँ चुनाँ गर्दिश नयायद अज़ बशर
ता मगर बारे दिगर गरदद बेगिर्द काबा अंदर राह दारद दर नज़र
मन नगूयम मर्दे आन ज़ाते लतीफ़ सूए अस्ले ख़ेश रा राजेअ गर
औलिया रा मर्ग मी बाशद हराम ला यमूतून अस्त चूं अंदर ख़बर
दर हज़ार व पंज व दो चूँ रफ़्ते ऊ रोज़े शह शंबा दह व पंज अज़ सिफ़र
क़ादरी गिरियां बमांद अज़ हिज्रे ऊ
कर्द अज़ दारे बदारे चूं सफ़र

आसमान क्यूँ न रोए जब कि समंदर और ज़मीन के शेख़ ने सफ़र-ए-आख़िरत (परलोक) इख़्तियार कर लिया।
वह सातों लोकों के शेख़ थे और पवित्र हरम के मोर थे।
उनकी दरवेशी फ़क्रे अहमदी से हुई थी; उनकी नज़र में सोने की हैसियत मिट्टी से भी कम थी।
पवित्र काबा की ज़ियारत के लिए भी उनसे बेहतर कोई न होगा, पहले भी कोई ऐसा ज़ाइर (तीर्थयात्री) वहां नहीं गया होगा।
वह रात-दिन तवाफ़ (परिक्रमा) करते रहे, ऐसे तवाफ़ और गर्दिश तो इंसान के बस के बात नहीं।

जब वह दोबारा काबा का तवाफ़ करने गये तो ख़ुद काबा को भी उनके तवाफ़ का इंतिज़ार था।

मैं यह तो कह ही नहीं सकता कि वह ज़ात मर गई है, बल्कि मैं तो यह कहता हूं कि वह अपनी असल की तरफ़ लौट गई।

औलिया के लिए तो मौत होती ही नहीं, जैसा कि हदीस में आया है "ला-यमूतून"।

1052 में मंगलवार के दिन और 15 सफ़र को उनका इंतिक़ाल हो गया। क़ादरी उनके बिछड़ने पर आंसू बहाता है क्योंकि उन्होंने इस दुनिया से उस दुनिया का सफ़र शुरू कर लिया है।

दारा शुकोह इश्क़ व मोहब्बत की शायरी नहीं करते थे, अन्यथा अगर वे उस राह पर चलते तो यह तय है कि वे अपने वक़्त के बड़े शायरों में शामिल होते, क्योंकि उनकी शायरी में जहाँ ग़ज़ल के अनासिर (तत्व) हैं, वहाँ बेहतरीन तग़ज़्ज़ुल (काव्यात्मकता) पाया जाता है। मिसाल के तौर पर इस तरह के कुछ शेर नीचे दिए गए हैं:

ख़ातिरे नक़्क़ाश दर तस्वीरे हुसनश जमा बूद	चूँ बज़ुल्फ़े ऊ रसीद आख़िर परेशानी कशीद
हमा चीज़े तू ख़ूब लेक ईं बद	कि तू बिसयार देर मी आई
बा दोस्त रसीदीन चूँ अज़ ख़ेश गुज़श्तीम	अज़ ख़ेश गज़श्तन चह मुबारक सफ़री बूद
हर ख़मो पेची केशुद अज़ ताबे ज़ुल्फ़े यार शुद	दाम शुद, ज़ंजीर शुद, तस्बीह शुद, ज़ुन्नार शुद
आशिक़े यार ख़ेश जुमला जहाँ	ऐ ख़ुश आँ कस के यारे आशिक़ ऊस्त
यार बिसयार बूद बाज़ी गर	क़ादरी रा बे-बुर्द दर बाज़ी
बशिकस्त दिले आबला अज़ गर्दिशे पायम	दरकारे मने आँ हम गिरही बुवद के वाशुद

उसके बनाने वाले ने जब तक उसके हुस्न की तस्वीर-कशी (चित्र बनाना) करता रहा, तब तक उसको इत्मिनान था लेकिन जब उसकी ज़ुल्फ़ बनाई तो परेशान हो गया।

तुम्हारी सारी बातें अच्छी हैं, लेकिन बुराई यह है कि तुम जल्दी नहीं आते।

अपने आपको खोकर दोस्त को पा लिया, अपने आपको खोया तो शानदार सफ़र साबित हुआ।

हर उलझन हमारे दोस्त के ज़ुल्फ़ों के मुड़ने की वजह से है, उनकी ज़ुल्फ़ ही है जो फंदा बन गई, ज़ंजीर बन गई, तस्बीह बन गई, जनेऊ बन गई।

हमारे महबूब की दीवानी यह सारी दुनिया है, बड़ा ही ख़ुशनसीब है वो शख़्स जिसके लिए हमारा महबूब दीवाना बन गया।

मेरा महबूब तो बड़ा खिलाड़ी निकला, क़ादरी को खेल में जीत ले गया।

मेरे पैरों की गर्दिश से मेरे आबले (छाले) का दिल टूट गया; मेरे काम में बस यही एक बाधा थी, लेकिन वह भी दूर हो गई

दारा शुकोह ने अपनी शायरी में कई जगहों पर 'मुल्ला' की कड़ी निंदा की है। इस पर विस्तार से चर्चा करने का यहां मौक़ा नहीं है। कुछ शेर का उल्लेख करना ही पर्याप्त है। दारा शुकोह ने कहा है:

बहिश्त आँ जा कि मुल्लाई न-बाशद ज़े मुल्ला शोर व ग़ोग़ाई नबाशद
जहाँ ख़ाली शवद अज़ शोरे मुल्ला ज़े फ़तवा हास्त परवाई नबाशद
दराँ शहरे के मुल्ला ख़ाना दारद दर आँ जा हेच दानाई नबाशद

(जन्नत वह जगह है जहां मुल्ला नहीं है, मुल्ला का शोर और कोलाहल भी वहाँ नहीं है।

दुनिया मुल्ला के शोर से खाली हो जाएगी और कोई भी उनके फ़तवों की परवाह नहीं करेगा।

जिस शहर में मुल्ला रहता है, वहां से बुद्धि और ज्ञान चला जाता है।)

दारा शुकोह की शायरी पर यह प्रारंभिक चर्चा है; इस विषय पर विस्तृत और विश्लेषणात्मक कार्य अभी होना बाक़ी है। हालाँकि यह एक जटिल एवं मेहनत वाला काम है क्योंकि इसके लिए लेखक को फ़न-ए-शेर (काव्य कला) एवं इस्लामी सूफ़ीवाद की परम्परा से परिचित होना आवश्यक है, लेकिन इस काम की ज़रूरत है।

संदर्भ:

1. दारा शुकोह: सफ़ीनतुल-औलिया, नवल किशोर, कानपुर, 1882 में प्रकाशित
2. मुहम्मद अफ़ज़ल सरख़ुश: कलिमातुश-शोअरा, मद्रास यूनिवर्सिटी, 1951, पेज 147
3. ख़ज़ीनतुल-असफ़िया, अनुवादक: मुफ़्ती महमूद आलम हाशमी और अल्लामा इक़बाल अहमद फ़ारूक़ी, मकतबा नबविया, लाहौर, 1401, खंड 1, पेज 262
4. मुफ़्ती ग़ुलाम सरवर लाहौरी: ख़ज़ीनतुल-असफ़िया, इकबाल अहमद फ़ारूक़ी द्वारा अनुवादित और व्यवस्थित, मकतबा नबिया, लाहौर, 2001
5. आफ़ताब राय लखनवी: तज़किरा रियाज़ुल-आरिफ़ीन, सैयद हिसामुद्दीन राशिदी द्वारा संपादित, फ़ारसी रिसर्च सेंटर ईरान और पाकिस्तान, 1982, पेज112
6. Bikrama Jit Hasrat: Dara Shikoh: Life and Work Work, Calcutta, 1953
7. कलिमातुश-शोअरा, पेज 166

दो दरियाओं का संगम
अर्थात् सूफ़ीवाद और वेदांत में एकता की राहें

दारा शुकोह की इल्मी (शैक्षणिक) और अमली (व्यावहारिक) ज़िंदगी का एक पहलू यह है कि उन्होंने इल्मी और अमली दोनों ही रूप से हिंदू धर्म और इस्लाम की परंपराओं के बीच सद्भाव और समानता के रूपों को खोजने का प्रयास किया था। दारा शुकोह किसी तरह इस्लाम और हिंदू धर्म के बीच एकता और सद्भाव का रास्ता बनाना चाहते था ताकि दोनों धर्मों के अनुयायी एक दूसरे का अधिक सम्मान करें और एक दूसरे के साथ और अधिक सद्भाव से रहें। यानी हर व्यक्ति अपने धर्म का पालन करे और दूसरे को भी शांति से अपने धर्म का पालन करने दे। धर्म के आधार पर तअस्सुब (पूर्वाग्रह) और तंग-नज़री (संकीर्णता) समाप्त हो और सभी लोगों में एक दूसरे के प्रति रवादारी (सहिष्णुता) और ख़ैर-सगाली (सद्भावना) की भावना हो।

सामान्य तौर पर यह कहा जा सकता है कि इस्लाम की रूहानी रिवायत (आध्यात्मिक परंपरा) का नाम तसव्वुफ़ है और हिंदू धर्म की आध्यात्मिक परंपरा का नाम वेदांत है। लेकिन यह एक सामान्य बात है और इसमें और भी विस्तार है, यानी दोनों धर्मों की आध्यात्मिक परंपराओं के और भी पहलू हैं जिन पर यहाँ विस्तार से बात करने का मौक़ा नहीं है।

दारा शुकोह ने असल काम यह किया था कि उन्होंने हिंदू और मुस्लिम रूहानी रिवायतों (आध्यात्मिक परंपराओं) को मिलाने की कोशिश की थी। चूंकि यह पूरी तरह से नई कोशिश थी इसलिए जहाँ कई लोगों ने इसे पसंद किया, वहीं कई लोगों ने इसका विरोध भी किया। उनकी इस कोशिश को नापसंद करने वालों में कुछ आम लोग और कुछ शाही परिवार के लोग थे।

दारा शुकोह ने उस समय के लोगों को भी अपने विचारों से सहमत करने की कोशिश की थी। ख़ास तौर पर शाही परिवार के लोगों को सहमत करने के लिए उन्होंने बाक़ायदा एक किताब लिखी जिसमें यह बताया कि इस्लाम और हिंदू धर्म की रूहानी रिवायत के बीच वास्तविक अंतर केवल शब्दों का है, हक़ीक़त का नहीं है। हक़ीक़त में दोनों की मंज़िल एक ही है।

शहज़ादा होने के बावजूद दारा शुकोह अपने वक़्त के महान विद्वान थे। ख़ास तौर पर उन्होंने सूफ़ीवाद का बहुत गहराई से अध्ययन किया था। इल्म की गहराई ने उन्हें नए रास्ते तलाशने के लिए प्रेरित किया और यह यह बात मालूम है कि जो भी नए अंदाज़ और नए तरीक़ों की बात करता है उस पर एतराज़ तो होता ही है। इसीलिए दारा शुकोह पर भी एतराज़ात हुए थे।

दारा शुकोह ने जिस नई राह की बात कही थी उससे इख़्तिलाफ़ दारा शुकोह के ज़माने में भी किया गया और आज भी किया जा सकता है। हालाँकि अगर इसका जायज़ा लिया जाए तो उनकी इस कोशिश को दो पहलुओं या दो शीर्षकों के साथ बयान किया जा सकता है:

पहला शीर्षक यह है कि दारा शुकोह का मानना था कि असल और शाश्वत सत्य सभी धर्मों के भीतर निहित हैं, यानी फैली हुई है। हरम के क़िंदील से निकलने वाली वही रोशनी हर जगह मौजूद है। फ़र्क़ शब्दावली और अभिव्यक्ति की शैली का है। लोग इस शैली को नहीं समझते, इसलिए एक-दूसरे का विरोध करते हैं।

दूसरा पहलू यह है कि दारा शुकोह एक नये हिंदुस्तान की तलाश में थे और वह हिंदुओं और मुसलमानों के बीच एकता और एकजुटता के लिए धार्मिक आधार तलाश रहे थे।

दारा शुकोह के ये विचार नए नहीं हैं, सिर्फ़ दारा शुकोह के दौर में और पूरे मध्यकाल में बल्कि आज भी ऐसे बहुत से लोग हैं जो इन विचारों को मानते हैं। बेशक, दारा शुकोह की आलोचना की जा सकती है और दूसरे लोगों की भी की जा सकती है। लेकिन, इन कामों को सकारात्मक नज़रिए से देखा जाना चाहिए और उनका मूल्यांकन किया जाना चाहिए। फिर, जो आलोचना के योग्य है उसकी

आलोचना करना और जो उपयोगी है उसे नकार देना निश्चित रूप से सकारात्मक परंपरा नहीं होगी।

दारा शुकोह ने तसव्वुफ़ और हिंदू धर्म की आध्यात्मिक परंपरा यानी वेदांत को समझाने और उनके बीच समानताओं का वर्णन करने के लिए एक किताब लिखी थी जिसका नाम है 'मजमउल-बहरैन'। इस किताब का मुख्य उद्देश्य शाही परिवार के लोगों को अपने विचारों से संतुष्ट करना था और यह बात उन्होंने ख़ुद इस किताब की भूमिका में लिखी है। उन्होंने लिखा है कि:

> "मैंने यह किताब बहुत शोध, अनुसंधान, व्यक्तिगत खोज और अवलोकन के बाद लिखी है, और मैंने इसे केवल अपने परिवार के लिए लिखा है। इस किताब में मेरा किसी भी संप्रदाय, हिंदू या मुस्लिम के लोगों से कोई लेना-देना नहीं है।"(1)

यही कारण है कि इस किताब के लिखने का ढ़ंग बहुत अलग और काफ़ी हद तक दार्शनिक है। इस किताब की लेखन शैली, अभिव्यक्ति पर इसका ज़ोर और तर्क करने का तरीक़ा बहुत ही अनोखा है। उन्होंने इसमें अपनी क़लम की पूरी ताक़त का इस्तेमाल किया है। यह किताब बहुत मुख़्तसर (संक्षिप्त) है और यह भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि इसका संबोधन आम जनता नहीं बल्कि उच्च शिक्षित लोग हैं। उन्होंने ख़ुद इस किताब की भूमिका में इसका उल्लेख किया है। वे लिखते हैं कि:

> "सूफ़ीवाद न्यायप्रियता का नाम है। इसलिए जो कोई भी न्यायप्रिय है और जिसके पास समझ व चेतना है, वह इस किताब (मजमउल-बहरैन) को पढ़कर समझ जाएगा कि मैंने इसमें कितना विचार किया है और यक़ीन की राह को परिभाषित करने में मैंने कितना प्रयास किया है। जो लोग समझदार हैं, उन्हें इस किताब से बहुत लाभ होगा, और जो लोग नासमझ हैं, वे इसके लाभों से वंचित रहेंगे।"(2)

जैसा कि पहले बताया गया है, दारा शुकोह ने इस किताब का नाम मजमउल-बहरैन रखा है। मजमउल-बहरैन क़ुरान का एक शब्द है। क़ुरान में मजमउल-बहरैन

का मतलब दो दरियाओं के संगम से है जो अलग-अलग होने के बावजूद एक साथ बहती हैं। इस किताब को यह नाम देकर दारा शुकोह ने एक तरह से इस बात की पुष्टि की है कि हिंदू धर्म और इस्लाम में रूहानियत और तसव्वुफ़ के दो दरिया हैं जो अलग-अलग होने के बावजूद एक साथ बह सकते हैं। ये दोनों एक नहीं हैं, फिर भी इनमें अनेकता में एकता है। इस किताब में उन्होंने इस विषय को पूरी स्पष्टता के साथ समझाया है। इस किताब की भूमिका में वे लिखते हैं:

> "इसके बाद यह फ़क़ीर मुहम्मद दारा शुकोह अर्ज़ करता है कि सच्चाई और ईमानदारी की वास्तविकता और सूफ़ियों के सच्चे धर्म और उसके रहस्यों की गहराई को जानने के बाद, इस बात ने मुझे भारत के एकेश्वरवादियों, यानी एक ईश्वर में विश्वास करने वालों और उनके तरीक़ों और ज्ञान को समझने के लिए प्रोत्साहित किया। इस वर्ग के कुछ शोधकर्ताओं और सिद्ध लोगों की संगति में बैठकर, जिन्होंने बड़ी बुद्धि, चेतना और पूर्ण समझ के साथ, बहुत कठिन तपस्या की थी और सूफ़ीवाद और ब्रह्मज्ञान के मूल तक पहुँचे थे, मैंने उनके साथ रहकर ज्ञान प्राप्त किया और उनके शास्त्रों को सीखा। मैंने उनके बीच ब्रह्मज्ञान और सत्य की पहचान में मौखिक मतभेदों को छोड़कर कोई अंतर नहीं पाया। इस दृष्टिकोण से मैंने दोनों पक्षों के विचारों के बीच सामंजस्य स्थापित किया। मैंने कुछ ऐसी बातों को मिलाकर एक किताब भी तैयार की जो सच को जानने वालों के लिए ज़रूरी और उपयोगी है। चूंकि यह किताब दो समूहों के धार्मिक विश्वासों और शिक्षाओं का संग्रह है, इसलिए मैंने इसका नाम "मजमउल-बहरैन" रखा।"(3)

मजमउल-बहरैन एक छोटी सी किताब है, लेकिन अपने विषयों की गहराई के लिहाज़ से यह किताब दरअसल दो महासागरों का संगम है। दरअसल इसे संगम भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि इसमें उन्होंने हिंदू धर्म की आध्यात्मिकता और इस्लाम के सूफ़ीवाद को एक दूसरे से नहीं मिलाया है, बल्कि दोनों को साथ-साथ रखा है, दोनों की तुलना की है और दोनों के बीच समानताओं को उजागर

किया है। मजमउल-बहरैन का हिंदी में अनुवाद करने वाले जगन्नाथ पाठक ने इसके बारे में लिखा है:

> मजमउल-बहरैन के अध्ययन से पता चलता है कि दारा शुकोह की सूफ़ीवाद और वेदांत दोनों धर्मों की आध्यात्मिक परंपराओं पर गहरी नज़र थी। उन्होंने दोनों के बीच एकता के तरीक़े खोजे और भारतीय सभ्यता और संस्कृति के नए संदर्भ दिए। इस किताब में उन्होंने न केवल दो अलग-अलग धर्मों, हिंदू धर्म और इस्लाम (आध्यात्मिक परंपरा) का तुलनात्मक अध्ययन किया है, बल्कि उन चीज़ों को भी स्पष्ट किया है जो उनमें समान हैं। यह सही है कि इस किताब में उनकी कही हर बात से सहमत होना ज़रूरी नहीं है, लेकिन फिर भी इस किताब में दारा शुकोह की 'उदारवादी विचारधारा' की विशालता को पूरी तरह महसूस किया जा सकता है, जो भारतीय सभ्यता का प्रतीक है।(4)

जगन्नाथ जी ने इस लेख में दारा शुकोह के बारे में बहुत अच्छी टिप्पणी की है। हक़ीक़त भी यही है कि दारा शुकोह उस मूल भारतीय सांस्कृतिक परंपरा, जो हजारों वर्षों से यहां स्थापित है, की ही एक कड़ी हैं और इस किताब में उन्होंने भारतीय परंपरा के इस विस्तार का वर्णन बहुत ही अनोखे अंदाज़ से किया है।

मजमउल-बहरैन में उनके लिखने का अंदाज़ यह है कि वे एक विषय स्थापित करते हैं और फिर उस विषय के अंतर्गत मुस्लिम सूफ़ियों के विचारों की व्याख्या करते हैं। उसके बाद वे वेदांत परंपरा में इससे संबंधित जो अवधारणा होती है उसकी व्याख्या करते हैं। फिर वे इस्लामी ग्रंथों, अर्थात् क़ुरान और हदीस से, बल्कि ख़ासतौर पर क़ुरान से ऐसे सबूत इकट्ठा करते हैं जिससे अंदाज़ा होता है कि इन दोनों अवधारणाओं के बीच सामंजस्य और एकरूपता है और कोई टकराव या विरोधाभास नहीं है।

इस किताब में दारा शुकोह ने 22 शीर्षकों या अध्यायों के अंतर्गत अपने विचार व्यक्त किये हैं। वे शीर्षक इस प्रकार हैं:

अनासिर अर्थात विभूति का वर्णन, इन्द्रियों का वर्णन, साधक के तरीक़े का वर्णन, अल्लाह के गुणों का वर्णन, रूह अर्थात् आत्मा का वर्णन, हवाओं का वर्णन, चार लोकों या चार गुणों का वर्णन जिन्हें भारत में चार अवस्थाएँ कहा जाता है, ध्वनि का वर्णन, प्रकाश का वर्णन, दर्शन का वर्णन, अल्लाह तआला का वर्णन, नबूवत और विलायत का वर्णन, ब्रह्मांड का वर्णन, दिशा का वर्णन, आसमानों का वर्णन, पृथ्वी का वर्णन, पृथ्वी के विभाजन का वर्णन अर्थात् उसके भागों का वर्णन, बरज़ख की दुनिया अर्थात् सूक्ष्म शरीर का का वर्णन, क़यामत अर्थात् परलय का वर्णन, निजात अर्थात् मोक्ष का वर्णन, दिन और रात का वर्णन और अंतिम अध्याय में इस विषय का वर्णन है कि ज़माना कभी ख़त्म नहीं होगा अर्थात् वक़्त का पहिया हमेशा चलता रहेगा।

22 अध्यायों या शीर्षकों के अंतर्गत दारा शुकोह ने इस किताब में सूफ़ीवाद, ख़ासतौर पर अध्यात्म के ऐसे जवाहर (रत्न) जमा कर दिए हैं, जो बहुत सी पुस्तकों में भी उपलब्ध नहीं हैं।

जैसे उन्होंने यह विचार व्यक्त किया है कि वेदान्त की दृष्टि में यह संसार या समय शाश्वत है जो सदैव विद्यमान रहेगा और कभी नष्ट नहीं होगा। जैसे दिन और रात बदलते रहते हैं वैसे ही समय की परिस्थितियाँ भी बदलती रहती हैं। लेकिन समय हमेशा बना रहता है। हिंदू शब्दावली में इसे ‘अनादि प्रवाह’ कहा जाता है।

हिंदू धर्म की इस अवधारणा को इस्लामी परंपरा के साथ सामंजस्य स्थापित करने के लिए दारा शुकोह ने पवित्र क़ुरान में सूरह अंबिया की आयत 104 को नक़ल किया है, जिसका अनुवाद है, “हमने तुमको जिस तरह पहले पैदा किया वैसे ही हम फिर पैदा करेंगे।” इसका उल्लेख कई अन्य आयतों में भी किया गया है। इसका मतलब यह है कि समय को लेकर इस्लाम और हिंदू धर्म की परंपराओं में कोई बड़ा विरोधाभास नहीं है। इस्लाम की नज़र में भी समय अनंत है और हिंदू धर्म में भी समय को अनंत माना गया है।

दारा शुकोह ने इस किताब में कई अन्य समान व्याख्याएँ की हैं, लेकिन अधिकांश स्थानों पर उनका प्रयास व्याख्या के माध्यम से दोनों धर्मों की अवधारणाओं को एक ही साबित करना रहा है। हालाँकि, कुछ स्थानों पर उन्होंने इस्लामी अवधारणाओं की व्याख्या में संकीर्ण वस्त्र और लंबे कद के मुद्दे पर भी चर्चा की है। उदाहरण के लिए, उन्होंने हिंदू धर्म में देवताओं की त्रिमूर्ति, अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और महेश, जिन्हें त्रिमूर्ति कहा जाता है, को ईश्वरीय गुण माना है और उनकी तुलना हज़रत जिब्रईल, हज़रत मीकाईल और हज़रत इस्राफ़ील से की है।(5) लेकिन इस किताब में ऐसे स्थान ज़्यादा नहीं हैं।

इस किताब की लेखन शैली को बेहतर ढंग से समझने के लिए इसका एक अंश बयान करना ज़रूरी है। इससे यह पता चलेगा कि कैसे उन्होंने हिंदू धर्म और इस्लाम की परंपराओं को एक साथ लाकर एक नए भारत की नींव रखने की कोशिश की। चारों लोकों के बारे में मजमउल-बहरैन में लिखा है:

अवालम-ए-अरबआ (चारों लोकों) के वर्णन में लोक चार हैं। सभी प्राणी इन्ही चार लोकों और अवस्थाओं में रहने के लिए विवश हैं। कुछ सूफ़ी कहते हैं कि ये चार ही हैं, यानी इंसानियत की दुनिया, जन्नत की दुनिया, ताक़त की दुनिया और दैवीय दुनिया। हालांकि कुछ सूफ़ी ये भी कहते हैं कि ये पांच हैं और काल्पनिक दुनिया को भी इसमें जोड़ देते हैं। कुछ सूफ़ी ऐसे भी हैं जो काल्पनिक दुनिया को तो मानते हैं लेकिन स्थायी दुनिया को नहीं मानते, बल्कि उसे जन्नत की दुनिया में शामिल मानते हैं। इस तरह उनके हिसाब से दुनिया चार ही हैं।

हिंदू विद्वान ने चेतना की चार अवस्थाएं बताई हैं: जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय। जाग्रत का संबंध आलम-ए-नासूत से है जो कि प्रकट जगत और जाग्रत जगत है। स्वप्न आलम-ए-मलकूत को कहते हैं जो रूह (आत्मा) और ख़्वाब (स्वप्नों) का लोक है। सुषुप्ति आलम-ए-जबरूत के समान है जिसमें संसार के रूप और मन शरीर के भेद नहीं रहते, चाहे आंखें खुली हों या बंद।

अधिकांश मुस्लिम सूफ़ी और हिंदू संत इस दुनिया से अवगत नहीं हैं इसलिए सैय्यदुत ताईफ़ा हज़रत अबुल-क़ासिम जुनैद बग़दादी रह. (हज़रत सिर्री सक़ती

(रह.) के भतीजे और इमाम शाफ़ई (रह.) के शिष्य) कहते हैं, “तसव्वुफ़ थोड़ी देर बिना तीमारदार के बैठने का नाम है।”

शेख़ुल-इस्लाम हज़रत अब्दुल्लाह बिन ख़ैर अल-अंसारी अल-हरवी ने पूछा कि बे-तीमार का क्या मतलब है? उन्होंने कहा कि बिना ढूंढ़े पा लेना और बिना देखे दीदार होना, क्योंकि देखने वाला ही देखने का कारण है। इसलिए, “बे-तीमार” की घड़ी वही अवस्था है जब सूरतें दिल से होकर नहीं गुज़रें। रूमी ने निम्न शेर में इसी ओर संकेत किया है:

ख़्वाही के बयाबी यक लहजा मजोयश
ख़्वाही के बदानी यक लहजा मदानश
चूँ दर निहानश जोई दूरी ज़े आशकारश
चूँ आशकार जूई महजूबी अज़ नेहानश
चूँ ज़ आशकार व पिन्हाँ बेरून शवी बबुरहान
पाहा दराज़मी कुन ख़ुश ख़स्प दर अमानश

और त्रिया लाहूत (ब्रह्मलीनता) के अनुरूप है जो कि ख़ुदा की ज़ात है और तीनों लोकों को व्यापक, शांतिपूर्ण और सम्मिलित करता है, बल्कि यह तीनों के ही लोक हैं। अगर इंसान का स्थानांतरण सूफ़ीवाद से बादशाही और वैभव में तथा वैभव से सूफ़ीवाद में हो तो यह उसकी तरक़्क़ी है। अगर हज़रत हक़ीक़तुल हक़ाइक़, जिन्हें हिंदू अरसन कहते हैं, सूफ़ीवाद की अवस्था से अवतरित हो और वैभव तथा बादशाही की अवस्था से गुज़र करे तो यह सफ़र दुनिया-ए-फ़ानी (नश्वर संसार) पर जाकर पूरी होती है। सूफ़ियों ने अवतरण के जो चार और किसी ने पाँच चरण बताए हैं उन सबका यही अर्थ है।(6)

यह अंश मजमउल-बहरैन से लिया गया है, जिसमें उन्होंने सूफ़ियों के बीच संसार की अवधारणा और हिंदू विद्वानों के यहाँ अवस्था की अवधारणा का वर्णन किया है।

दुनिया का मसला सीधे तौर पर आस्था का मसला नहीं है। यह दरअसल सूफ़ीवाद के इज्तिहाद का मसला है। शरीयत के नज़रिए से इसे मानना या न

मानना एक ही बात है। हालांकि, इस किताब में कुछ जगहों पर ऐसे मसले भी हैं जो सीधे आस्था से जुड़े हैं और कुछ जगहों पर दारा शुकोह की व्याख्या सही नहीं है। उदाहरण के लिए, जिस तरह से ईश्वरीय गुणों को भारतीय परंपरा से जोड़कर लिखा गया है, वह इस्लामी आस्थाओं के ऊंचे क़द को एक तंग लबादे में समेटने की कोशिश है। लेकिन दारा शुकोह के यहाँ भी ऐसे अवसर बहुत कम मिलते हैं। वे आमतौर पर ऐसे मुद्दों पर चर्चा करते हैं जिनमें किसी भी धर्म की मान्यताओं पर चर्चा न हो।

दारा शुकोह का ज़ोर मुस्लिम और हिंदू दोनों धर्मों के व्यक्तिगत अस्तित्व को बनाए रखने और इसके साथ ही उनके बीच सद्भाव पैदा करने तथा एक-दूसरे के धर्मों को बिना किसी पूर्वाग्रह के देखने और समझने पर है।

उपरोक्त व्याख्याओं के अतिरिक्त, मजमउल-बहरैन में कई महत्वपूर्ण चर्चाएँ हैं और उनमें बहुत गहन विषयों को समझाया गया है। उनकी विशेष रुचि पूरी किताब में दिखाई देती है और हिंदू व मुसलमान के बीच मतभेदों की खाई को कम करने का प्रयास किया गया है।

निस्संदेह, यह किताब दारा शुकोह की बेहतरीन किताबों में से एक है। इस किताब के माध्यम से दारा शुकोह ने भारतीय सांस्कृतिक परंपरा के लिए एक बुनियाद स्थापित करने का प्रयास किया है और विभिन्न धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन के लिए एक सकारात्मक पद्धति निर्धारित की है तथा वेदांत और सूफ़ीवाद के बीच अनुकूलता और सामंजस्य का मार्ग बनाने की कोशिश की है। बेशक, इस किताब में सब कुछ क़ाबिल-ए-क़ुबूल नहीं है, और शायद कुछ भी क़ाबिल-ए-क़ुबूल न हो। लेकिन इसमें कोई शक नहीं है कि दारा शुकोह ने इस काम को बहुत ईमानदारी से किया था और अपनी समझ और क्षमता के अनुसार एक अच्छा काम करने की कोशिश की थी। इस काम को और बेहतर, अधिक उचित और सकारात्मक तरीक़े से करने की ज़रूरत है।

संदर्भ:

1. दारा शुकोह: मजमउल-बहरैन, प्रोफ़ेसर महफ़ूज़ुल हक़, अंग्रेज़ी अनुवाद के साथ, कलकत्ता 1929, पेज 80
2. As above
3. As above
4. मजमउल-बहरैन हिंदी अनुवाद जगन्नाथ पाठक, राका प्रकाशन, इलाहाबाद, 2005, मुक़द्दमा (भूमिका)
5. मजमउल-बहरैन पेज 90
6. दारा शुकोह: मजमउल-बहरैन, प्रोफ़ेसर महफ़ूजुल हक, अंग्रेज़ी अनुवाद के साथ, कलकत्ता 1929, पेज 80

मानव जीवन के रहस्यों को उजागर करना

उपनिषदों का अनुवाद और योग की परंपरा

मुग़ल बादशाहों की प्रारम्भ से ही भारत और भारतीय संस्कृति, भारतीय भाषाओं, भारतीय भूगोल और उसके लोगों में रुचि रही है। यह परंपरा विशेष रूप से अकबर और शाहजहाँ के शासनकाल के दौरान काफ़ी विकसित हुई। बादशाह अकबर ने कई महत्वपूर्ण संस्कृत पुस्तकों का फ़ारसी में अनुवाद कराया था। इस अनुवाद के पीछे उनका मुख्य लक्ष्य हिंदुओं और मुसलमानों के बीच एक धार्मिक मुकालमा शुरू करना था ताकि दोनों धर्मों के अनुयायी एक-दूसरे को समझ सकें और सामाजिक स्तर पर बेहतर जीवन जी सकें। अबुल फ़ज़ल ने महाभारत के फ़ारसी अनुवाद की भूमिका लिखी थी। इस भूमिका में उन्होंने कहा कि संस्कृत पुस्तकों के अनुवाद का वास्तविक उद्देश्य यह है कि इससे दोनों धर्मों के अनुयायियों के बीच सद्भाव पैदा होगा।

बादशाह अकबर के बाद शाहजहाँ के शासनकाल में दबिस्ताने मज़ाहिब लिखी गई। कुछ अर्थों में यह किताब धर्म के अध्ययन के इतिहास में अपनी तरह की पहली किताब थी। यह किताब भारत में विद्यमान विभिन्न धर्मों का परिचय देती है और इसकी विशेषता यह है कि प्रत्येक धर्म का परिचय उस धर्म के अनुयायी या उसके महान विद्वान द्वारा दिया गया है। अर्थात् इस किताब का उद्देश्य यह वर्णन करना है कि विभिन्न धर्मों के अनुयायी उन्हें किस प्रकार देखते हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि यह धर्मों के निष्पक्ष अध्ययन पर आधारित पहली किताब है।

उपनिषदों में वेदान्त दर्शन का वर्णन है। उपनिषदों का ही एक नाम वेदान्त है, जिसका अर्थ है कि उनकी रचना के बाद वेदों का अंत हो गया, अर्थात वेद पूर्ण हो गए। वेदांत की परंपरा मुसलमानों में वहदतुल-वुजूदी सूफ़ीवाद की परंपरा के

लगभग समान है। दोनों के बीच गहरी समानताएं हैं। कुछ शब्दावली में अंतर है लेकिन परिणामों की दृष्टि से दोनों में कोई मौलिक या बुनियादी अंतर नहीं है। क्योंकि दोनों का परिणाम यह है कि बाहर में अस्तित्व का कोई द्वैत नहीं है, बल्कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में केवल एक ही अस्तित्व है और यही वहदतुल वुजूद के सिद्धान्त का सत्य भी है कि इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को केवल एक ही अस्तित्व मानना ही सच्चा अस्तित्ववाद है।

कई सूफ़ियों के लिए वहदतुल वुजूद की स्थिति को प्राप्त करना सूफ़ीवाद का अंतिम लक्ष्य और अंतिम गंतव्य है। इस बिंदु पर सभी रहस्य प्रकट हो जाते हैं और अज्ञानता के पर्दे हट जाते हैं। इसी प्रकार वेदान्त में भी अंतिम लक्ष्य यही माना गया है कि व्यक्ति अस्तित्व के द्वैत भाव को समाप्त कर दे, उसकी नज़र से रंग व भेद मिट जाएं और वह ख़ुदा का अवलोकन करे।

सूफ़ीवाद और वेदांत की दुनिया की यह ऐसी हक़ीक़त है जिस पर न तो सभी सूफ़ी सहमत हैं और न ही सभी योगी। बहुत से योगी भी वहदतुल वुजूद को स्वीकार नहीं करते। बल्कि वे अस्तित्व के द्वैत को मानते हैं। इसके बावजूद एक बड़ा वर्ग इसे अंतिम सत्य के रूप में स्वीकार करता है। उनका मानना है कि हर कोई इस महान सत्य को नहीं समझ पाता, बल्कि बहुत कम लोग ही समझ पाते हैं। यह एक कठिन रास्ता है जिस पर हर कोई नहीं चल सकता। इसलिए, लोग अपनी-अपनी धार्मिक पहचान के साथ जीते हैं और हर कोई मानता है कि वे ही सही रास्ते पर हैं और बाक़ी सभी झूठ के पुजारी हैं। दारा शुकोह को भी एहसास यह एहसास था कि उन्होंने वहदतुल वुजूद को देख लिया है।

यही वह समय था जब शहज़ादा मुहम्मद दारा शुकोह ने हिंदू धर्म का व्यापक अध्ययन शुरू किया था। उन्होंने व्यक्तिगत रूप से हिंदू विद्वानों से मुलाक़ात की, हिंदू धर्म को समझा और हिंदू धार्मिक पुस्तकों का अनुवाद किया तथा कुछ पुस्तकों का दूसरों से अनुवाद करवाया। इस संबंध में उन्होंने स्वयं 52 उपनिषदों का फ़ारसी में अनुवाद किया। यह अनुवाद धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होने के साथ-साथ ऐतिहासिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है।

दारा शुकोह से पहले, हिंदुओं और मुसलमानों के बीच की खाई को पाटने की जो कोशिशें की गईं और इस मक़सद से जिन किताबों के अनुवाद हुए उनमें आमतौर पर महाभारत और रामायण आदि जैसी आम धार्मिक पुस्तकों के अनुवाद थे। बादशाह अकबर ने भी इन्हीं पुस्तकों का अनुवाद कराया और उनके माध्यम से भारत के महान सत्य, यहाँ के ज्ञान, नैतिकता और बुद्धिमत्ता को फ़ारसी में प्रस्तुत किया। इन किताबों के अनुवाद के अलावा इसी तरह के विषयों पर अन्य काम भी हुए थे और उन्हें करने वालों में मुस्लिम और ग़ैर-मुस्लिम दोनों शामिल थे। दरअसल, इस दौरान इसी तरह के विषयों पर कुछ काम भी हुए, लेकिन वे अनुवाद नहीं थे, बल्कि स्वयं के लिखे हुए थे।

लेकिन उपनिषदों में व्यक्त महान आध्यात्मिक सत्य, उपमा और तुलना की समस्याएं तथा निर्गुण ब्रह्म और सगुण ब्रह्म की चर्चा का विस्तार से अध्ययन सर्वप्रथम दारा शुकोह ने किया और उनके माध्यम से भारतीय धर्मों का एक नए प्रकार का अध्ययन प्रारंभ हुआ। अब तक हिंदू धर्म को बहुदेववाद और मूर्तिपूजा से जोड़कर देखा जाता था। एकेश्वरवाद की परंपरा का ज़्यादा ज़िक्र नहीं किया जाता था। लेकिन उपनिषदों के अनुवाद के साथ ही हिंदू धर्म के अध्ययन में एकेश्वरवाद और ईश्वर की पवित्रता के उन विषयों पर भी चर्चा हुई जो मुसलमानों के धार्मिक विचारों से काफ़ी हद तक मेल खाते थे। हालाँकि शब्दावली अलग थी, लेकिन अवधारणाएँ लगभग एक जैसी ही थीं। दारा शुकोह की इस परंपरा ने भारत के भीतर एक नए धार्मिक मुकालमा की शुरुआत की जो महाभारत और रामायण पर आधारित नहीं था, बल्कि उपनिषदों जैसी रहस्यवादी पुस्तकों पर आधारित था।

दारा शुकोह राजनीति के मैदान में हार गए और उनके बाद की राजनीतिक परिस्थितियों ने दारा शुकोह द्वारा शुरू की गई मुकालमा की परंपरा को पूरी तरह से शुरू नहीं होने दिया। दारा शुकोह के बाद औरंगज़ेब का शासन आया और उसके तुरंत बाद भारत में औपनिवेशिक शक्तियों का युग शुरू हुआ। इसकी वजह से हमारे देश की पूरी सांस्कृतिक परंपरा ख़तरे में पड़ गई। इन परिस्थितियों में दारा

शुकोह और उसके जैसे अन्य लोगों ने जो परिदृश्य बनाया था, वह पूरी तरह बदल गया।

बहरहाल, दारा शुकोह ने अपनी भरपूर कोशिश से उपनिषदों की परंपरा को ख़ूब बढ़ावा दिया। उन्होंने उपनिषदों का प्रवाहपूर्ण और सामान्य भाषा में अनुवाद किया, जिससे वे व्यापक रूप से लोकप्रिय हो गये। फ़ारसी ज़बान के ज़रिए लोगों को हिंदू धर्म की इस परंपरा के बारे में जानकारी मिली। इस किताब ने हिंदू धर्म को एक धर्म के रूप में, विशेष रूप से विदेशों और यूरोप में परिचित कराया। लोग भारत को तो जानते थे लेकिन हिंदू धर्म से परिचित नहीं थे। हिंदू धर्म को दुनिया से परिचित कराने का श्रेय दारा शुकोह को जाता है। उपनिषदों का अनुवाद, जिसका फ़ारसी नाम सिर्रे-अकबर है, ने हिंदू धर्म को यूरोप में पेश किया और हिंदू धर्म के आधुनिक अध्ययन की नींव रखी। लोगों ने, ख़ास तौर पर यूरोप के लोगों ने इसके बाद ही हिंदू धर्म का अध्ययन करना शुरू किया।

उपनिषद का शाब्दिक अर्थ है ‘पास बैठो’। उपनिषद कोई एक किताब नहीं है, बल्कि इस नाम से कई किताबें हैं। ये सभी किताबें वेदों की व्याख्या हैं। इन किताबों को यह नाम इसलिए दिया गया है क्योंकि इनमें वेदों के गुरूओं (आचार्यों) ने धर्म, ब्रह्माण्ड, ब्रह्मा, जीवन एवं मृत्यु के राज़ तथा परमसत्ता के ऐसे गूढ़ रहस्यों को उजागर किया है जिन्हें साधारण लोग ठीक से समझ नहीं सकते। वह रहस्य जिस भाषा और शैली में बयान किए जाते हैं उनके शब्दों से लोग धोखा खा सकते हैं। इसलिए, गुरू अपने कुछ ख़ास शिष्यों को अपने पास बैठा कर ये रहस्य और गहरे राज़ बयान करते थे। शिष्यों ने उन वार्तालापों को लिख लिया। चूँकि ये वार्तालाप गुरु के बहुत क़रीब बैठकर लिखे गए थे, इसलिए उन्हें उपनिषद कहा जाता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि उपनिषद वेदों की व्याख्या है जिसे गुरु ने विशिष्ट शिष्यों को अपने निकट बैठाकर समझाया था। चूंकि उपनिषदों में गहन रहस्यों का वर्णन है, इसलिए दारा शुकोह ने उनके अनुवाद का नाम 'सिर्रे-अकबर' रखा, जिसका अर्थ है सबसे बड़ा रहस्य, या 'सिर्रुल-असरार', जिसका अर्थ है रहस्यों का रहस्य।

उपनिषदों का यह अनुवाद 1657 में पूरा हुआ। इस अनुवाद को पूरा करने में शुरू से अंत तक छह महीने लगे, लेकिन सच्चाई यह है कि यह अनुवाद दारा शुकोह की जीवन भर की कड़ी मेहनत का परिणाम था।

जब दारा शुकोह ने उपनिषदों का अनुवाद करने का इरादा किया तो ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने पहले स्वयं संस्कृत सीखी, जिसके बाद बनारस से कई माहिर पण्डितों को बुलाया गया और उनकी मदद से 52 उपनिषदों का अनुवाद किया गया। उन्होंने इस अनुवाद के लिए एक विस्तृत भूमिका भी लिखी है जिसमें उपनिषदों के महत्व पर प्रकाश डाला गया है और अपने अनुवाद का भी परिचय कराया है।

उपनिषदों के इस अनुवाद के पीछे दारा शुकोह का एक मक़सद उस महान वास्तविकता और सबसे बड़ी सच्चाई को जानना था जो सारे संसार में फैली हुई है। उन्होंने इस अनुवाद के संदर्भ में ख़ुद इसकी व्याख्या की है कि:

> “मैंने तौहीद यानी एकेश्वरवाद की वास्तविकता को समझने के लिए कई सूफ़ियों से मुलाक़ात की और सूफ़ीवाद पर कई पुस्तकों का अध्ययन किया और ख़ुद भी लेख लिखे, लेकिन एकेश्वरवाद बिना किनारों वाला एक सागर है, यानी एक ऐसा सागर है जिसका कोई किनारा नहीं। जितना मैंने इसे समझने की कोशिश की, उतनी ही मेरी प्यास बढ़ती गई। अंततः मुझे यह बात समझ में आई कि तौहीद यानी एकेश्वरवाद को केवल ख़ुदा के कलाम से ही समझा जा सकता है। इसलिए मैंने पवित्र क़ुरान का अध्ययन किया। लेकिन बहुत कम लोग पवित्र क़ुरान के पूरे रहस्यों को जानते हैं। इसलिए मैंने इसे और अधिक स्पष्ट करने के लिए तौरेत, ज़बूर और इंजील (बाइबल) का अध्ययन किया। लेकिन इन पुस्तकों के अनुवाद संतोषजनक नहीं थे। इसलिए मैंने तय किया कि भारत में भी तौहीद-ए-इलाही के लेख मौजूद हैं और कई प्राचीन विद्वानों ने इन लेखों की व्याख्या की है। उन्हें भी समझा जाना चाहिए, इसलिए मैंने भारतीय पुस्तकों अर्थात् उपनिषदों का अनुवाद किया।”(सारांश)

इसके बाद दारा शुकोह ने कहा कि भारत में चार आसमानी किताबें (पवित्र ग्रंथ) हैं: ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। ये पुस्तकें भारत भेजे गए पैग़म्बरों (ईशदूत) पर अवतरित हुईं। उनमें से सबसे महान स्वयं ब्रह्मा हैं, अर्थात हज़रत आदम (अलै.)। इसके बाद दारा शुकोह ने क़ुरान की वह आयतें लिखीं हैं जिनसे साबित होता है कि अल्लाह ने सभी धर्मों में पैग़म्बर (दूत) भेजे थे।

दारा शुकोह ने उपनिषद की अहमियत बयान करते हुए लिखा है कि इनमें चारों वेदों का सारांश तथा उनके रहस्यों और गुप्त बातों का विस्तृत विवरण है, साथ ही एकेश्वरवाद का बयान भी है। ये वेदों की व्याख्याएं हैं और इन्हें उपनिषद कहा जाता है।

यहाँ एक और बात का ज़िक्र ज़रूरी है कि 'सिर्रे-अकबर' के कुछ नुस्ख़ों में 'उपनिषद' की जगह पर 'उपन कहत' लिखा है। कुछ मुद्रित स्थानों पर भी 'उपन कहत' ही लिखा है, इसलिए संभव है कि उपनिषदों को 'उपन कहत' कहने की भी परंपरा रही हो। दारा शुकोह के विचार में ये उपनिषद एकेश्वरवाद के रहस्यों की सर्वोत्तम व्याख्या हैं। हालाँकि, उन्हें दुख है कि हिंदुओं में भी बहुत कम ही लोग इन रहस्यों को जानते हैं।

दारा शुकोह ने बनारस के बारे में लिखा है कि वह इस क़ौम अर्थात् हिंदुओं का दारुल-उलूम (ज्ञान का घर) है। मैंने वहां से कई पंडितों, संन्यासियों और उपनिषद विशेषज्ञों को बुलाया और उनकी मदद से मैंने उनका शब्दशः अनुवाद करना शुरू किया।

एक दिलचस्प बात यह है कि दारा शुकोह ने उपनिषदों का अनुवाद शुरू करने से पहले क़ुरान से फ़ाल निकाला (अच्छे और बुरे का शगुन मालूम करना) था। यह इस बात का प्रमाण है कि दारा शुकोह की नज़र में यह कार्य एक सेवा थी और स्पष्ट है कि यह कार्य एक सेवा समझ कर ही किया गया था। इसलिए, इस किताब की भूमिका में ख़ुद भी उल्लेख किया है कि इस किताब का अनुवाद करने का मेरा उद्देश्य सिवाए इसके कुछ नहीं कि मैं ख़ुद इसको समझूँ और अपने दोस्तों

और साथियों को भी समझाऊँ। उन्होंने इस किताब के पाठकों को पूर्वाग्रह और तंग नज़री (संकीर्णता) का चश्मा हटाकर इसे समझने की सलाह भी दी।

दारा शुकोह ने इस अनुवाद की भूमिका में केवल उपनिषदों के महत्व के बारे में बात की है। उन्होंने अपने अनुवाद के बारे में बस इतना ही लिखा है कि यह शब्दशः सटीक है। लेकिन उन्होंने इसे शाब्दिक रूप से आत्म-संयम की भावना से लिखा है। सच तो यह है कि यह अनुवाद बहुत उच्च गुणवत्ता का है। इस अनुवाद की भाषा बहुत स्पष्ट और प्रवाहपूर्ण है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि दारा शुकोह को फ़ारसी ज़बान पर महारत हासिल थी। उनकी सभी पुस्तकों में विशुद्ध भाषा का प्रयोग किया गया है। भाषा और अभिव्यक्ति की दृष्टि से भी 'सिर्रे-अकबर' एक उत्कृष्ट कृति है।

दारा शुकोह के इस अनुवाद के दो महत्वपूर्ण पहलू विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इसका पहला महत्व यह है कि यह हिंदू धर्म की आध्यात्मिक परंपरा पर फ़ारसी में अनुवादित पहला व्यापक ग्रंथ है। इससे पहले महाभारत, रामायण आदि का अनुवाद हो चुका था, लेकिन उपनिषदों के रहस्य अभी तक फ़ारसी पाठकों के लिए उपलब्ध नहीं थे। इस अनुवाद से आम विद्वानों के लिए उपनिषदों को समझना आसान हो गया।

इस अनुवाद का दूसरा और सबसे बड़ा महत्व यह है कि इसने वैश्विक स्तर पर हिंदू धर्म के अध्ययन की नींव रखी। इस किताब के माध्यम से यूरोपीय लोग हिंदू धर्म की आध्यात्मिक परंपरा से परिचित हुए। इस किताब का फ़्रेंच भाषा में अनुवाद किया गया। फिर जर्मन भाषा में और उसके बाद यूरोपीय प्राच्यविदों, विशेषकर जर्मनी के लोगों ने हिंदू धर्म के विस्तृत अध्ययन की नींव रखी।

उपनिषदों के इस अनुवाद का अपने आप में वैश्विक महत्व तो है ही, स्थानीय स्तर पर भी इसका बहुत महत्व है, अर्थात भारत के संदर्भ में। हालाँकि, इस पर विस्तार से चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इस किताब में इन चर्चाओं को पहले ही विस्तार से शामिल किया जा चुका है। फिर भी इस मौक़े पर, इस

अनुवाद में से नमूने के तौर पर कुछ बातें पेश की जाती हैं। जिनसे इस किताब और इसके अनुवाद की अहमियत स्पष्ट होगी।

जैसा कि मालूम है कि सभी उपनिषद किसी न किसी वेद की व्याख्या हैं, दारा शुकोह ने इस अनुवाद में प्रत्येक उपनिषद के बारे में बताया है कि वह किस वेद का उपनिषद है। एक उपनिषद मुण्डक उपनिषद है जिसमें उन्होंने आत्मा और परमात्मा से संबंधित एक अनुवाद इस तरह किया है:

> "दो ख़ुबसूरत परिंदे एक दरख़्त (पेड़) पर बैठे हैं। दोनों एक दूसरे के साथी हैं, दोस्त हैं और एक ही डाल पर रहते हैं। दोनों में से एक को इस दरख़्त के फल मीठे लगते हैं और वह उन्हें खा लेता है। दूसरा कुछ नहीं खाता, बस देखता रहता है। इन दो परिंदों में से जो खाता है वह जीवात्मा है और जो केवल देखता है वह परमात्मा है। दरख़्त मानव शरीर को दर्शाता है और मीठे फल उसके कर्म हैं, जिन्हें जीवात्मा अपनी अज्ञानता के कारण उपयोग करती है। जब उसे सच्चाई पता चलेगी तो वह भी इन्हें खाना बंद कर देगी और उसे हर तरह की शांति और आराम प्राप्त हो जाएगा।"

एक अन्य उपनिषद है 'ईशावास्य उपनिषद्' जिसके एक अंश का अनुवाद इस प्रकार है:

> "जो व्यक्ति सभी तत्वों और सभी लोकों को अपने भीतर देखता है और स्वयं को सभी तत्वों और सभी लोकों के भीतर देखता है, उसकी नज़र में कुछ भी बुरा नहीं हो सकता, कुछ भी घृणा योग्य नहीं हो सकता, उसकी दृष्टि में कुछ भी निंदनीय नहीं हो सकता।"

इस प्रकार दारा शुकोह ने उपनिषदों के ज्ञान और रहस्यों को फ़ारसी में प्रस्तुत किया और जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है कि दारा शुकोह द्वारा किये गए इस अनुवाद से उपनिषदों की पहचान पूरी दुनिया में हुई और उनमें छिपे ज्ञान को उस समय के विद्वानों के समक्ष उजागर किया।

उपनिषद वैसे तो कई हैं, लेकिन 108 उपनिषदों को अधिक विश्वसनीय माना जाता है। इनमें से 52 उपनिषदों का अनुवाद दारा शुकोह ने किया है। इन 52

उपनिषदों समेत अन्य सभी उपनिषदों में भी, सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा ईश्वर या ब्रह्म की हस्ती का है। इन पुस्तकों में ब्रह्म के दो पहलुओं का वर्णन किया गया है। एक है निर्गुण ब्रह्म और दूसरा है सगुण ब्रह्म। निर्गुण ब्रह्म वह आयाम है जिसका वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता, लेकिन इसके लिए जो भी बात कही जाए वह उससे भी बुलंद है। यह अवधारणा अन्य धर्मों में भी मौजूद है, लेकिन इसे उपनिषदों में “नियति-नियति” शब्द के माध्यम से सर्वोत्तम रूप से व्यक्त किया गया है। अंग्रेज़ी में इसका अनुवाद Negation of the Negation है। लेकिन वह भी इसका पूरा अर्थ अदा नहीं कर पाता। यह वास्तव में ईश्वर की पूर्ण उत्कृष्टता या उसके निर्गुण होने का बयान है, जहां उसके लिए किसी भी चीज़ को साबित नहीं किया जा सकता।

ब्रह्मा का दूसरा आयाम सगुण ब्रह्म का है। इसके अनुसार ब्रह्मा ब्रह्माण्ड के रचयिता हैं। वह अनादि एवं शाश्वत है, वही इस ब्रह्माण्ड को चला रहा है। उसका कोई भागीदार नहीं है। वह सबका मालिक है। वह परम ज्योति है, प्रकाश है, ज़िंदा रखने वाला और मारने वाला वही है।

दारा शुकोह को उपनिषदों की इन शिक्षाओं में वही भावना नज़र आई जो सूफ़ीवाद में मौजूद है। इसमें भी परमेश्वर की पवित्रता का सार यही है कि उसके लिए कुछ भी साबित नहीं किया जा सकता। वह परमेश्वर है। लेकिन जब वह मक़ाम-ए-तस्बीह (उपमा की स्थिति) में होता है, तो पूर्णता के सभी गुण उसके लिए साबित हैं। इस प्रकार, दारा शुकोह ने उपनिषदों में सूफ़ी परंपरा के प्रमाण देखे और इसलिए उन्होंने उपनिषदों का अनुवाद किया। यह अनुवाद उनके लिए ज्ञान की एक नई दुनिया से परिचित होने का माध्यम साबित हुआ और इसके माध्यम से उन्होंने भारतीय ज्ञान और बुद्धिमता की एक छिपी हुई शाखा को भी सबके सामने प्रस्तुत किया और यही वास्तव में सिर्रे अकबर के उपनिषदों के अनुवाद का वास्तविक महत्व है।

यद्यपि योग की परम्पराओं और उपनिषदों में वर्णित तथ्यों में सामान्य और विशेष के बीच कार्य-कारण सम्बन्ध है, अर्थात् कुछ एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं और

कुछ का अलग-अलग दायरा है, लेकिन योग बड़ी हद तक एक व्यावहारिक क्षेत्र है, जिसमें व्यक्तिगत कार्यों से लेकर सरकार और साम्राज्य तक के मुद्दों पर चर्चा की जाती है।

दारा शुकोह इस परंपरा से भी बहुत प्रभावित थे। इसलिए उन्होंने योग पर भी काम किया। उन दिनों उनकी व्यस्तता शायद ज़्यादा थी इसलिए उन्होंने योग का काम दूसरों को सौंप दिया। उनकी देखरेख में दूसरे लोगों ने योग पर प्रसिद्ध किताब जोगबशिष्ट (योगवशिष्ठ) का फ़ारसी में अनुवाद किया। इस अनुवाद के साथ तीन पृष्ठों की एक भूमिका है, जिसमें दारा शुकोह का नाम विशेष सम्मान के साथ लिया गया है, जिससे अंदाज़ा होता है कि यह भूमिका अनुवादक द्वारा ही लिखी गई होगी, लेकिन कुछ विद्वानों का मत है कि यह भूमिका ख़ुद उन्हीं का लिखा हुआ है।

इस भूमिका में उन्होंने स्पष्ट रूप से लिखा है कि जोगबशिष्ट के कई अनुवाद हैं, हालांकि वे आसानी से उपलब्ध नहीं हैं लेकिन मिल जाते हैं। परन्तु वे अनुवाद मानकों पर खरे नहीं हैं और उनमें शब्दों की पूरी व्याख्या नहीं की गई है। इसलिए दारा शुकोह इस किताब का नया अनुवाद करना चाहते थे और उसके मंत्रिमंडल के किसी व्यक्ति ने यह ज़िम्मेदारी स्वीकार की और इसका अनुवाद किया। अनुवादक का नाम मालूम नहीं है लेकिन बाद में लोगों ने अनुवादक का नाम जानने की कोशिश की है।

जोगबशिष्ट का अनुवाद दारा शुकोह के लिए भी व्यक्तिगत रुचि का विषय था। यह रुचि इसलिए थी क्योंकि यह किताब वास्तव में रामचंद्र जी की कहानी से शुरू होती है, जो एक राजा भी थे और एक "जीवन मुक्त" भी थे। इसी तरह, दारा शुकोह भी एक शासक थे। महाराजा रामचंद्र जी राजा होते हुए भी जीवन मुक्त कैसे हुए? इस किताब में इसी प्रश्न का उत्तर है। इसीलिए दारा शुकोह की इस किताब में अधिक रुचि थी। वह उन सिद्धांतों को जानना चाहते थे जिनका पालन करके एक शासक भी 'जीवन मुक्त' हो सकता है।

किताब की शुरुआत इस बात से होती है कि महर्षि वाल्मीकि के शिष्यों में से एक महर्षि भारद्वाज थे। एक दिन उन्होंने एकांत में अपने गुरु से पूछा कि आप तो सब कुछ जानने वाले हैं। मुझे बताइए कि श्री रामचन्द्रजी उच्च ज्ञानी और जीवन मुक्त होकर भी राजकार्य किस प्रकार कर लेते हैं? महर्षि वाल्मीकि ने जवाब दिया कि जो कुछ तुमने पूछा है, उसका उत्तर देता हूँ। इस उत्तर से तुम्हारे दिल का अंधकार दूर हो जाएगा।

इस परिचय के बाद वास्तविक किताब शुरू होती है। इसमें महर्षि वाल्मीकि ने रामचंद्रजी का संक्षिप्त जीवनवृत्त बताने के बाद योग दर्शन की व्याख्या की है तथा उसे प्राप्त करने की विधियां भी बताई हैं।

इस किताब में सात अध्याय हैं।

दारा शुकोह स्वयं एक राजकुमार थे। ईश्वरीय नियति के निर्णय मनुष्य के नियंत्रण से परे हैं। वे शासन नहीं कर सकते थे, अन्यथा, उस समय प्रत्यक्ष परिस्थितियाँ ऐसी थीं कि वे विश्व की एक बहुत बड़ी शक्ति के शासक बनने वाले थे।

दारा शुकोह स्वभाव से सूफ़ी थे और व्यवहारिक रूप से शासक थे। यानी उन्हें धर्म और दुनिया में सामंजस्य बिठाना था। दीन और दुनिया में सामंजस्य बिठाने का तरीक़ा भी जोगबशिष्ट में बताया गया है। इसलिए दारा शुकोह ने सावधानीपूर्वक इस किताब का अनुवाद करवाया, इसकी शिक्षाओं को अपने जीवन में शामिल किया और अपने लेख के माध्यम से इन शिक्षाओं को जनता तक पहुंचाने का प्रयास किया।

जोगबशिष्ट के अलावा गीता भी योग की मशहूर किताब है। दारा शुकोह के पास इसके कई अनुवाद थे। इन अनुवादों में से फ़ैज़ी का अनुवाद उन्हें बहुत पसंद आया। वे अक्सर उसका अध्ययन करते रहते थे।

वर्तमान में विश्व भर के कुछ पुस्तकालयों, जैसे ब्रिटिश संग्रहालय में गीता की ऐसी प्रतियां मौजूद हैं जिन पर अनुवादक के रूप में दारा शुकोह का नाम लिखा है। इसलिए दारा शुकोह के जीवनीकारों में मतभेद भी है। कुछ लोग मानते हैं कि

दारा शुकोह ने गीता का अनुवाद किया था, लेकिन आम राय यह है कि अनुवादक के रूप में उनका नाम ग़लती से आ गया। लेकिन इससे पता चलता है कि दारा शुकोह को गीता में बहुत रुचि थी और वह अक्सर अपने पास इसकी एक प्रति रखते थे।

दारा शुकोह ने योग की परंपरा को समझने की कोशिश की कि कैसे एक व्यक्ति दुनिया के कामों को पूरा करते हुए जीवन से मुक्त हो सकता है। कैसे एक साथ दीन और दुनिया को अपनाया जा सकता है? दारा शुकोह इस पद्धति में इसलिए रुचि रखते थे क्योंकि इससे वह एक ऐसी स्थिति प्राप्त कर सकते थे जहां वे एक सूफ़ी और संत का जीवन व्यतीत कर सकते थे तथा सांसारिक मामलों और शासन के कार्य भी संभाल सकते थे।

इसलिए दारा शुकोह ने योग पर काम शुरू किया। चूँकि योग और वेदांत पुराण पर काम एक ही समय के हैं और उनमें समानताएँ भी हैं, इसलिए दोनों का उल्लेख एक साथ किया गया है।

बाबा लाल बैरागी के दरबार में

बाबा लाल बैरागी अपने समय के एक सिद्ध पुरुष थे। कुछ लोगों ने लिखा है कि वह पंजाब (पाकिस्तान) के क़सूर शहर के एक खत्री परिवार से थे। विल्सन नामक अंग्रेज़ इतिहासकार ने लिखा है कि वे मालवा के रहने वाले थे। वैसे रमता जोगी (सन्यासी) और बहता पानी का कोई वतन नहीं होता है, वे जहाँ भी जाते हैं, दूसरों का भला करते हैं। लेकिन फिर भी जन्म स्थान से एक संबंध होता है। हालाँकि जन्म स्थान निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है लेकिन वे उत्तर भारत के एक बुज़ुर्ग (संत) हैं। वे स्वयं एक महान साधु संत थे और बिक्रमाजीत हसरत के अनुसार उनका एक स्थायी पंथ यानी मज़हब भी था। उनके मज़हब को मानने वाले लोग आज भी बड़ौदा के आस-पास पाए जाते हैं। उनके संप्रदाय को “बाबा लाल का शैल” कहा जाता है।

दारा शुकोह से उनकी पहली मुलाक़ात आगरा में हुई थी। इस मुलाक़ात का ब्यौरा उपलब्ध नहीं है। दारा शुकोह के जीवनीकार बिक्रमाजीत हसरत ने इस मुलाक़ात का ज़िक्र किया है। उनके लिए यह एक सुखद अनुभव था। संभव है कि इस मुलाक़ात में बाबा लाल ने दारा शुकोह को सलाह दी हो कि हर धर्म में महात्मा होते हैं, इसलिए सबके साथ खुले दिल और उदारता से पेश आना चाहिए।

दारा शुकोह ख़ुद इस मुलाक़ात से बहुत फ़ायदा हुआ और बाबा लाल के व्यक्तित्व से भी बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने अपनी किताब हसनातुल आरिफ़ीन में लिखा है कि बाबा लाल बैरागी हिंदू क़ौम में एक अद्वितीय ऋषि और सिद्ध पुरुष हैं।

बाबा लाल बैरागी जहांगीर और शाहजहाँ के शासनकाल के दौरान एक बहुत प्रसिद्ध साधु, संत और दरवेश थे। विचारों और धारणाओं के संदर्भ में वे एकेश्वरवादी हैं। दारा शुकोह के सोच और विचार पर बाबा लाल बैरागी का बहुत

प्रभाव है। वह उनके विचारों और व्यक्तित्व दोनों से बहुत प्रभावित थे। इसीलिए वे उनकी सेवा में भी रहे। दारा शुकोह ने अपनी किताब हसनातुल-आरिफ़ीन में बाबा लाल के बारे में लिखा है:

> “बाबा लाल हिंदू धर्म के महान संतों में से एक हैं। मुझे हिंदुओं में उनसे बड़ा कोई संत नहीं मिला। वह बहुत ही उदार विचारों वाले व्यक्ति थे। वह सभी धर्मों को समान मानते थे। दारा शुकोह ने आगे लिखा कि उन्होंने एक बार मुझसे कहा था कि हर धर्म में संत और सिद्ध लोग गुज़रे हैं। याद रखें कि ख़ुदा अपने कृपा और आशीर्वाद से इस क़ौम को बचा सकते हैं, अर्थात उन लोगों को जो इस महापुरुष के मार्ग पर चलते हैं। इसलिए अकारण किसी की महानता का इंकार मत करो।”

दारा शुकोह से उनकी आख़िरी मुलाक़ात लाहौर में नवंबर-दिसंबर 1653 में हुई थी। दारा शुकोह उस समय लाहौर में थे। जब दारा शुकोह को बाबा लाल के बारे में पता चला तो वह उनके आश्रम में गये और तीन दिन तक वहीं रहे। इसके बाद वे वापस लौट आये, लेकिन अधिक आध्यात्मिक प्यास महसूस हुई तो वे उनकी सेवा में पुनः उपस्थित हुए एवं तीन दिन तक और उनके आश्रम में रहे। इस दौरान दारा शुकोह ने बाबा लाल बैरागी से कई सवाल भी पूछे और बाबा लाल ने उनके जवाब दिए। इन सवालों और उनके जवाबों का संग्रह “मुकालमा-ए-शहज़ादा दारा शुकोह बाबा लाल बैरागी” (दारा शुकोह और बाबा लाल बैरागी की वार्ता) के नाम से जाना जाता है।

दारा शुकोह के स्वभाव में जो उदारता थी उसमें बाबा लाल की संगति का भी असर है। बाबा लाल लोगों को धर्म के आधार पर नहीं बांटते थे। बल्कि, वे शब्दों के माध्यम से अर्थ की सच्चाई को व्यक्त करना चाहते थे। उदाहरण के लिए इसी किताब में एक प्रश्न है कि फ़क़ीर को क्या बोलना चाहिए? बाबा ने जवाब दिया, “ला इला-ह इल्लल्लाह” बाबा ने अरबी शब्द की नक़ल की और उसके माध्यम से हमें एकेश्वरवाद की हक़ीक़त की ओर निर्देशित किया, जिसका अर्थ है कि

असल हक़ीक़त वह है जो इन शब्दों का मतलब है। ये शब्द उस हक़ीक़त की ओर संकेत एवं मार्गदर्शक हैं।

चूंकि बाबा लाल बैरागी हिंदू थे, इसलिए दारा शुकोह के अधिकांश प्रश्न हिंदू धर्म को समझने से संबंधित थे। हालाँकि, प्रश्न मुख्य रूप से वेदांत और अध्यात्म से ही संबंधित हैं।

हालाँकि दारा शुकोह और बाबा लाल बैरागी के बीच इस मुकालमे (मुकालमा) के अंदर बहुत सारे प्रश्न शामिल हैं। फिर भी ऐसा लगता है कि यह मुकालमा पूर्ण नहीं है, बल्कि यह मुकालमे की बुनियाद मात्र है। अन्यथा कई दिनों तक चलने वाली लम्बी बैठकों में इससे अधिक चर्चा होती और इसका एक प्रमाण यह है कि स्वयं दारा शुकोह ने हसनातुल आरिफ़ीन में बाबा लाल बैरागी की कुछ बातें लिखी हैं जो इस किताब में नहीं हैं।

हालांकि यह किताब अध्यायों और विषयों में विभाजित नहीं है लेकिन इन सभी प्रश्नों और उनके उत्तरों को बिना किसी विषयगत व्यवस्था के संयोजित कर दिया गया है। लेकिन अगर इन्हें ध्यान से पढ़ा जाए तो कुल मिलाकर इन सभी प्रश्नों को दस विषयों में विभाजित किया जा सकता है। दारा शुकोह के बारे में एक बहुत ही शोधपरक किताब है बिक्रमा जीत हसरत की किताब “Dara Shikuh: Life and Works.” इस किताब में भी उन्होंने लगभग यही विभाजन अपनाया है। वे विषय इस प्रकार हैं:

1. रूहानियत (अध्यात्म) क्या है?
2. दिल क्या है?
3. नींद क्या है?
4. निजात (मोक्ष) कैसे प्राप्त किया जा सकता है?
5. कामिल रूहानियत (पूर्ण आध्यात्मिकता) के लक्षण क्या हैं?
6. आत्मा और परमात्मा के बीच क्या संबंध है?
7. हिंदू पौराणिक कथाओं के विभिन्न पहलू।
8. हिंदू धर्म में पूजा की अवधारणा।

9. काशी की तीर्थ यात्रा का महत्व और वास्तविकता।

10. आत्माओं का पुनर्जन्म यानि आवागमन।

दारा शुकोह और बाबा लाल बैरागी के बीच यह वार्ता बहुत प्रसिद्ध है और पूर्व और पश्चिम में हर जगह लोकप्रिय रहा है। कई लोगों ने इसकी विषय-वस्तु और शैली पर चर्चा की है। इन टिप्पणियों में एक बात जो उभर कर सामने आती है, वह यह है कि यह वार्ता मध्य युग के भीतर दो अलग-अलग धर्मों के बीच समझ और सामान्य आध्यात्मिक मूल्यों के तरीक़ों को खोजने का एक सफल प्रयास है। इस किताब की शैली तर्क वितर्क की नहीं, बल्कि उपदेशात्मक है। यह शैली उस ज़माने में कहीं नहीं पाई जाती थी, बल्कि धार्मिक प्रवचन के नाम पर हर जगह धार्मिक बहसें होती थीं। इन बहसों में एक-दूसरे को नीचा दिखाने की कोशिश होती थी। कोई भी सत्य की तलाश नहीं करता था।

इस मुकालमा (वार्ता) की शुरुआत से पहले इस मुकालमा के बारे में एक छोटा सा नोट लगाया है जिसमें लिखा है कि:

> "जो इस मुकालमे को पढ़ लेगा वह दुनिया और उसकी हक़ीक़त से वाक़िफ़ (परिचित) हो जाएगा। हक़ीक़त भी यही है कि इस मुकालमे के पढ़ने से मोह और माया दोनों की हक़ीक़त क़ारी (पाठक) पर खुल जाती है। फिर न मोह रहता है और न माया।"

ज़ाहिर है, इस मुकालमे में केवल शब्द ही हैं। इन शब्दों के माध्यम से इल्म और ज्ञान तो प्राप्त होता है लेकिन इस इल्म और ज्ञान की वास्तविकता प्राप्त नहीं होती। इसकी वास्तविकता केवल दो तरीक़ों से प्राप्त की जा सकती है: या तो किसी ऐसे बुद्धिमान की संगति प्राप्त करके, जो अपनी दूरदृष्टि से दिल के खोट दूर कर दे और ईमान की रोशनी से दिल रोशन हो जाए या फिर साधक स्वयं कठिन परिश्रम और अनुशासन के माध्यम से दिल को संसार की कुरूपता और बाह्य वस्तुओं के प्रेम से शुद्ध कर लेता है और इस प्रकार दिल का अंधेरा दूर हो जाता है।

इसका अर्थ यह है कि राहे-सुलूक पर बिना परिश्रम और अनुशासन के उच्च पद प्राप्त नहीं हो सकते। मेवाती भाषा के सूफ़ी शायर भीखजी ने अपनी कविता में इसे बहुत ख़ूबसूरती से व्यक्त किया है:

मेहनत कर री बावरी बिन मेहनत नहीं पान
बिन मेहनत रीझे नहीं गुरु, धनी, भगवान

(यानी ऐ बेवक़ूफ़ मेहनत कर, इसलिए कि मेहनत के बिना न गुरु की कृपा मिल सकती है, न मालिक की और न भगवान की।)

दारा शुकोह और बाबा लाल बैरागी के बीच इस मुकालमे की असली ख़ूबसूरती यह है कि यह ब्रह्मांड और अध्यात्म की सच्ची वास्तविकता को स्पष्ट और सरल शब्दों में समझाता है। इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि इस किताब को पढ़ने से सुलूक (तसव्वुफ़) की एक मंज़िल आसान हो गई। अब दूसरी मंज़िल बची है। जिसके लिए एक मुर्शिद-ए-कामिल (सिद्ध योगी) या मेहनत-ए-कामिल की ज़रूरत होती है।

वैसे, इस मुकालमे का एक-एक शब्द बहुत क़ीमती है। हालाँकि, इसकी शैली को समझने के लिए कुछ नमूने और अंश दिए गए हैं ताकि मुकालमा और उसके विषय की समग्र प्रकृति का आकलन किया जा सके। उदाहरण के लिए दारा शुकोह ने पूछा कि नाद और बीद में अंतर कैसे किया जाए। बाबा लाल ने शहज़ादे की स्थिति का सम्मान करते हुए उत्तर दिया कि बादशाह और उसके हुक्म में कोई अंतर नहीं है क्योंकि बादशाह का इज़हार उसके हुक्म के ज़रिए ही होता है।

एक प्रश्न किया: फ़क़ीर किस चीज़ का क़ैदी है? बाबा ने उत्तर दिया: खाना, पहनना, देखना, सुनना और सोना, ये सब इंसान के लिए क़ैद हैं। जो कोई उन पर विजय प्राप्त कर लेता है वह मानो क़ैद से छूट जाता है।

दारा शुकोह ने पूछा कि हज़रत सारे ही लोग अपने-अपने तरीक़े से इबादत करते हैं। यह कैसे मालूम होगा कि किसी की इबादत क़बूल हुई या नहीं।

बाबा लाल ने जवाब दिया कि यदि बंदा (इबादत करने वाला) स्वयं अपनी इबादत से संतुष्ट है और उसे यक़ीन है कि उसने ठीक से इबादत की है, तो समझो

कि उसकी इबादत क़ुबूल हो गई। लेकिन यदि बंदा स्वयं कहे कि वह ठीक से इबादत नहीं कर पाया, उसे ठीक से इबादत करनी चाहिए थी, आदि, तो क्या उसकी इबादत क़ुबू होगी? अर्थात्, ख़ुदा और बंदे के बीच सम्बन्ध स्थापित करना ही इबादत है। यदि सम्बन्ध स्थापित हो जाए तो इबादत क़ुबूल होती है, अन्यथा नहीं। इसे इस प्रकार भी समझा जा सकता है कि यदि ज़बान ख़ुदा का नाम ले रही हो और मन अपने भाई को नीचा दिखाने या सांसारिक व्यापार में लगा हो, तो क्या वह इबादत होगी?

दारा शुकोह ने एक सवाल पूछा कि फ़क़ीर किन राहों का क़ैदी है? बाबा लाल ने जवाब दिया कि एक फ़क़ीर वजूद (अस्तित्व) का कैदी है, यानी खाने, पीने, देखने, सुनने और सोने का। अगर कोई इन पर नियंत्रण पा लेता है, तो वह कामिल (पूर्ण) हो जाता है।

दारा शुकोह ने फिर पूछा कि हज़रत खाना, पीना, देखना, सुनना और सोना ये सब मानव शरीर की ज़रूरतें हैं। इंसान ये सब इसलिए करता है ताकि उसके अंगों को ताक़त मिले और इनके ज़रिए जीवन के दूसरे काम किए जा सकें। राहे-सुलूक (तसव्वुफ़ के रास्ते) के नेक लोग उन पर क़ाबू पाने की बात करते हैं। लेकिन उन्हें नियंत्रित करना थोड़ा मुश्किल है। इस संबंध में आप क्या कहते हैं?

बाबा लाल बैरागी ने उत्तर दिया कि वास्तविक मुद्दा इन इच्छाओं का नहीं, बल्कि दिल पर नियंत्रण का है। साधक अपने दिल की निगरानी करते हैं और इन इच्छाओं पर क़ाबू रखते हैं।

उदाहरण के लिए, ये इच्छाएँ बच्चों और युवाओं को समान शक्ति प्रदान करती हैं। लेकिन कुछ ऐसे मामले हैं जिनमें बच्चे और युवा बराबर नहीं हैं। उदाहरण के लिए, अगर कोई बच्चा किसी ना-महरम महिला के साथ गले मिले तो उसका बुरा नहीं माना जाता। इसके विपरीत जवान आदमी की निगाह भी बुरी मानी जाती है। अतः जिस प्रकार एक बच्चे के दिल में महिला के प्रति कोई इच्छा नहीं होती, उसी प्रकार एक साधक के दिल में भी किसी सांसारिक सुख की इच्छा नहीं होनी चाहिए। उसके बाद जो चाहो करो।

दारा शुकोह ने पूछा कि ख़ालिक़ (ख़ुदा) और मख़्लूक़ (इंसान) में क्या अंतर है? दारा शुकोह ने इस सवाल को आगे स्पष्ट करते हुए कहा कि मैंने यह सवाल एक अन्य स्थान पर पूछा था और वहां मुझे बताया गया था कि ख़ालिक़ और मख़्लूक़ का उदाहरण एक बीज और उसके वृक्ष के समान है। इस संबंध में आप क्या कहते हैं?

बाबा लाल ने उत्तर दिया कि ख़ालिक़ समुद्र के समान है और मख़लूक़ घड़े के समान है। पानी दोनों जगह मौजूद है लेकिन दोनों में बहुत फ़र्क़ है।

दारा शुकोह ने पूछा कि परम कैसे आत्मा बन जाता है और फिर आत्मा किस तरह परम बन जाती है। बाबा लाल ने उत्तर दिया कि जैसे पानी शराब बन जाए, फिर उसे मिट्टी में गिरा दो तो यह फिर धरती के भीतर शुद्ध पानी बन जाता है। यानी जब तक व्यक्ति में संसार की अशुद्धियाँ हैं, तब तक वह आत्मा ही रहेगा और जब वह ख़ुद को फ़ना कर लेगा, तो परमात्मा बन जाएगा। दारा शुकोह ने एक और सवाल पूछा कि ज़्यादातर फ़क़ीर लोग अपनी विशेष पोशाक में लोगों के सामने आते हैं। ताकि लोग उन्हें पहचान सकें, यानी उनके तरीक़े में एक तरह का दिखावा होता है। कुछ लोग इस पर आपत्ति भी जताते हैं। आपकी क्या राय है? बाबा लाल बैरागी ने जवाब दिया कि अपने आपको ज़ाहिर करना मना नहीं है, अगर कोई इस रास्ते से जाना चाहे तो जा सकता है। इसके अलावा एक और बात यह भी है कि कपड़े पहचान का ज़रिया होते हैं। अगर कोई फ़क़ीर अपने कपड़ों में है तो लोग उसे पहचान लेंगे और अगर किसी को राहे-सुलूक का कोई मसला पूछना होगा तो वह फ़क़ीर को उसके कपड़ों से पहचान कर उससे उसकी समस्या जान लेगा। इसका मतलब यह है कि फ़क़ीरों के लिए अपने ज़ाहिरी कपड़ों में रहना अच्छा है।

शहज़ादा दारा शुकोह ने पूछा कि फ़क़ीर के सिर पर क्या है, यानी उसके सहारे क्या क्या हैं? बाबा लाल ने जवाब दिया कि फ़क़ीर के सिर पर ख़ुदा का साया है। फिर उसने पूछा कि हर आदमी के आगे क्या है? बाबा ने कहा कि मौत है। फिर उसने पूछा कि फ़क़ीर आदमी की अक़्लमंदी क्या है और उसकी बेवक़ूफ़ी

क्या है? बाबा ने जवाब दिया, "फ़क़ीर आदमी की अक़्लमंदी कम खाना है, और फ़क़ीर आदमी की बेवक़ूफ़ी अधिक खाना है।"

इस मुकालमे में दारा शुकोह ने श्री रामचन्द्रजी, सीताजी और रावण के रूपकों (metaphors) के माध्यम से जीवन और राहे-सुलूक की वास्तविकताओं के बारे में भी प्रश्न पूछे हैं। रामायण के इस प्रसंग से जुड़े कई सवाल हैं और बाबा लाल ने उनके विस्तृत जवाब दिए हैं। इसी तरह और भी कई सवाल हैं। जिसमें गहरे दार्शनिक एवं आध्यात्मिक रहस्य छिपे हुए हैं।

कुल मिलाकर इस किताब में इतने श्रेष्ठ और गहरे चिंतन वाले विषय हैं कि इसे समझने के लिए भी बाक़ायदा एक शिक्षक की आवश्यकता है। यदि कोई व्यक्ति हिंदू धर्म की वेदांत परंपरा और इस्लाम की सूफ़ीवाद और आध्यात्मिक परंपरा से अच्छी तरह परिचित नहीं है, तो वह इन अवधारणाओं को पूरी तरह से नहीं समझ सकता है।

बाबा लाल बैरागी और दारा शुकोह के बीच यह मुकालमा एक ओर तो भारत की आध्यात्मिक परंपरा का व्यापक परिचय है। दूसरी ओर, हिंदू और मुस्लिम आध्यात्मिक परंपराओं में समान आधार खोजने का प्रयास भी सराहनीय है और यह गुरु और शिष्य की परंपराओं का एक उत्कृष्ट उदाहरण है, जहां एक मुस्लिम शिष्य अपने हिंदू गुरु के समक्ष अपनी समस्याएं और प्रश्न रखता है और हिंदू गुरु मुस्लिम शिष्य की शब्दावली का सम्मान करते हुए उसकी मानसिक उलझन और समस्याओं का समाधान करता है। इसके साथ ही यह मुकालमा ज्ञान और आध्यात्म की महानता का भी प्रमाण है कि इतने बड़े देश का शहज़ादा और अपने समय का सबसे धनी व्यक्ति भी ज्ञान की प्यास बुझाने के लिए एक फ़क़ीर की कुटिया पर जाता है और एक शिष्य की तरह उसके सामने बैठता है।

बाबा लाल बैरागी और शहज़ादा दारा शुकोह के बीच मुकालमा यद्यपि एक छोटी सी किताब है लेकिन यह अपने अर्थ के ऐतबार से बहुत बुलंद है और शहज़ादा दारा शुकोह के मानसिक विकास पर इसका बहुत प्रभाव है। इस किताब

में शहज़ादे के मन की पूरी कहानी सामने आती है जिससे पता चलता है कि उसके वास्तविक डर और कठिनाइयाँ क्या हैं।

बहरहाल, दारा शुकोह के विचार तथा सोच को समझने के साथ-साथ हिंदू-मुस्लिम मुकालमे की परंपरा के एतबार से भी यह किताब बहुत महत्वपूर्ण है।

दीबाचा-ए-मुरक़्क़ा: एक परिचय

शहज़ादा मुहम्मद दारा शुकोह की किताबों के बारे में यह ज़िक्र आ चुका है कि दारा शुकोह ने या फिर उनकी बीवी नादिरा बेगम और दारा शुकोह ने मिलकर कैलीग्राफ़ी और चित्रकला के कुछ नमूने एकत्र किए और एक मुरक़्क़ा (एल्बम) बनाया। इन नमूनों वाला यह मुरक़्क़ा उपलब्ध है और इसकी मूल प्रति इंडिया ऑफ़िस लाइब्रेरी (लंदन) में रखी गई है।

पर्सी ब्राउन के अनुसार इस किताब में कुल चालीस नमूने हैं जिनमें से कुछ कैलीग्राफ़ी के नमूने हैं और कुछ चित्र हैं।(1) लेकिन पर्सी ब्राउन का अस्पष्ट विवरण संदेह से भरा है, इसलिए डॉ. सैयद अब्दुल्ला ने इसमें 77 पृष्ठों तक के नमूनों का ज़िक्र किया है।

हालांकि यह मुरक़्क़ा वर्तमान में ब्रिटिश सरकार के स्वामित्व में है, लेकिन एक समय यह भारत के शाही लाइब्रेरी की शोभा बढ़ा रही थी। औरंगज़ेब ने इसे अपने शाही लाइब्रेरी में सुरक्षित रखवाया था। डॉ. सैयद अब्दुल्ला ने इस मुरक़्क़ा के कवर से एक मुहर कॉपी की है, जिस पर लिखा है:

"सैय्यद अली अल-हुसैनी, मुरीद बादशाह आलमगीर सन 1069"

सैयद अली अल-हुसैनी औरंगज़ेब के ज़माने में शाही लाइब्रेरी में मुनीम या लाइब्रेरियन थे।(2) इस मुहर से यह स्पष्ट होता है कि यह मुरक़्क़ा औरंगज़ेब की लाइब्रेरी में शामिल था। फिर किसी समय यह अंग्रेज़ों के क़ब्ज़े में आ गई और ब्रिटेन पहुंच गई।

पर्सी ब्राउन और डॉ. सैयद अब्दुल्ला ने लिखा है कि इस मुरक़्क़ा पर सुनहरे अक्षरों में शहज़ादा दारा शुकोह के हस्ताक्षर हैं।(3)

डॉ. सैयद अब्दुल्ला ने इस मुरक़्क़ा में दारा शुकोह के हस्ताक्षर और बीवी के नाम भेंट के लेख के बारे में लिखा है कि यह अस्पष्ट है और इसे स्पष्ट रूप

से पढ़ा नहीं जा सकता (4) और निस्संदेह लेख भी अस्पष्ट है। मौलवी मुहम्मद शफ़ी ने इस लेख की तस्वीर भी दी है जिसमें लेख बहुत स्पष्ट नहीं है, हालांकि, प्रयास करने पर इसे पढ़ा जा सकता है। डॉ. सैयद अब्दुल्लाह ने तो संपूर्ण लेख को कॉपी नहीं किया है। हालांकि, मौलवी मुहम्मद शफ़ी ने संपूर्ण लेख कॉपी किया है, जो इस प्रकार है:

> ईं मुरक़्क़ा नफ़ीस बा'नीस ख़ास व हमदम व हमराज़ ब-इख़्तिसास नादिरा बेगम दादह शुद। मुहम्मद दारा शुकोह इब्ने शाहजहाँ बादशाह ग़ाज़ी सन 1051.(5)

पर्सी ब्राउन ने लेख के इस अंश का अनुवाद इस प्रकार किया है:

> This album was presented to his dearest and nearest friend, the Lady Nadirah Begum, by Prince Muhammad Dara Shikoh, son of the Emperor Shah Jahan, in the year 1051 (A. D. 1641-2).

इस लेख से यह स्पष्ट है कि यह मुरक़्क़ा (एलबम) दारा शुकोह ने अपनी बीवी नादिर बेगम को भेंट किया था। इस भेंट के समारोह का पता नहीं चलता। हालाँकि अगर दीबाचा-ए-मुरक़्क़ा का लेख कहीं से पूरी तरह पढ़ने लायक़ उपलब्ध हो जाए तो संभव है कि इस मुश्किल का हल निकल जाए।

डॉ. सैयद अब्दुल्लाह ने इसमें शामिल नमूनों की संख्या नहीं लिखी है लेकिन उन्होंने लिखा है कि पेज के एक तरफ़ एक चित्र है और दूसरी तरफ़ एक कैलीग्राफ़ी का नमूना है। उन्होंने इस पेज से केवल कैलीग्राफ़र या चित्रकार के हस्ताक्षर को कॉपी किया है लेकिन इन नमूनों और चित्रों का परिचय नहीं दिया है। इस तरह उन्होंने लेख के 77 पृष्ठों तक की कॉपी की है। पर्सी ब्राउन ने इन चित्रों की संख्या 40 लिखी है, इसलिए ज़ाहिर है कि इसमें 40 चित्र और चालीस सुलेख के नमूने शामिल थे।

मौलवी मुहम्मद शफ़ी ने इस एलबम का अपेक्षाकृत विस्तृत परिचय दिया है। उन्होंने लिखा है कि इस एलबम की विषय-वस्तु का परिचय लिखने वाले

पहले व्यक्ति औरंगज़ेब की लाइब्रेरी के प्रबंधक सैयद अली हुसैनी थे। उनके अनुसार इस एलबम में 81 पेज हैं जिनमें से चार ख़ाली हैं और दो पृष्ठों पर चित्र नष्ट हो गए हैं। कुल 76 पृष्ठों में सुलेख के नमूने हैं और 78 पृष्ठों पर चित्र हैं। पुस्तकालय निदेशक ने औरंगज़ेब के शासनकाल के दसवें साल के जुलूस यानी 1669 में इसका यह परिचय लिखा था। उससे पहले उसके शासनकाल के तीसरे साल के जुलूस यानी 1662 में इस एलबम की क़ीमत एक हज़ार रुपए तय की थी जिसका ज़िक्र भी पुस्तकालय प्रबंधक ने इसके पहले पेज पर कर दी है।

मौलवी मुहम्मद शफ़ी ने इस एलबम में से केवल प्रसिद्ध कैलीग्राफ़रों के नाम का उल्लेख किया है और उनके हालात भी लिखे हैं लेकिन चित्रकारों के बारे में कुछ नहीं लिखा है, हालांकि डॉ. सैयद अब्दुल्लाह ने उन पृष्ठों का उल्लेख किया है जिन पर कोई लेख या हस्ताक्षर हैं। उन्होंने जिन नामों का उल्लेख किया वे इस प्रकार हैं:

2: मुहम्मद क़दीमी के लेखन का नमूना

20/2 अल-अब्द अली कातिब

21/1 अल-फ़क़ीर अल-मुज़न्निब मीर अली अल-कातिब

21/2 एक ईरानी युवक की तस्वीर है। जाम भर रहा है। तस्वीर पर “अमल मोहम्मद ख़ाँ मुसव्विर 1043” लिखा हुआ है।

21/1 निहायत उम्दा पेंटिंग है जो ईरानी चित्रकला का श्रेष्ठ नमूना है।

27/1 अल-फ़क़ीर अब्दुल-हुसैनी 1018

28/1 फ़क़ीर अब्दुर्रहीम अम्बरीन क़लम

29/1 कुतबा, अल-अब्द मुहम्मद हुसैन ज़र्रीन क़लम जहांगीर शाही।

37/1 एक मुग़ल पेंटिंग बहुत ख़ूबसूरत है कोई शहज़ादी किसी दरवेश के पास बैठी है।

39/1 सुल्तान मुहम्मद ख़नदान द्वारा लिखित लेख का नमूना

38/2 मुहम्मद बिन इस्हाक़ शहाबी

40/2 फ़क़ीर मुहम्मद अल-कश्मीरी के लेख का नमूना

41/1 और 41/2 पौधों के उत्कृष्ट चित्र।

48/1 किसी अमीर का चित्र है। दोनों तरफ़ फ़क़ीर अली और मीर अली लिखा हुआ है।

58/2 वसायाय उर्दशीर बाबकान

60/9 मुहम्मद शाह महमूद कैलिग्राफ़र द्वारा लिखित लेख का नमूना

62/2 कत्बा ज़ैनुद्दीन महमूदिया हरे रंग की स्याही से लिखा गया है।

60/2 फ़क़ीर मुहम्मद हुसैन ज़र्रीन क़लम अकबर शाही

71/2 और 72/1 पक्षियों के बहुत सुंदर चित्र हैं।

74/1 फ़रंगी (अंग्रेज़) महिला की तस्वीर है जो किसी दूसरे फ़रंगी पुरुष से मुलाक़ात कर रही है।

77/1 मिश्क़ा सुल्तान मुहम्मद नूर तजावज़ुल्लाहु अन्हु काले रंग की पेज पर सफेद स्याही से लिखी गई है और नाम गुलाबी रंग से लिखा है।(6)

कई अन्य लोगों ने भी ऐसे एलबम संकलित किए थे। पर्सी ब्राउन ने लिखा है कि 67 एलबम तो अकेले मिस्टर रिचर्ड जॉनसन हिंदुस्तान से लेकर ब्रिटेन गए थे।(7) इन एलबम पर भूमिका लिखे जाने की परंपरा रही है, जिसमें आमतौर पर एलमब को संकलित करने का कारण बताया जाता है। इंडिया ऑफ़िस में दारा शुकोह के एलबम की कॉपी में ज़ाहिर तौर पर कोई भूमिका शामिल नहीं है इसीलिए इसका ज़िक्र किसी ने नहीं किया है। हालांकि, डॉ. सैयद अब्दुल्लाह ने लिखा है कि इस एलबम की भूमिका 'निगारिस्तान-ए-मुनीर' नामक लेख में शामिल है। यह नुस्ख़ा पेरिस की नेशनल लाइब्रेरी में सुरक्षित है। सैयद अब्दुल्ला ने इस नुस्ख़े को वहीं से कॉपी किया है। उन्होंने आगे लिखा है कि उन्होंने इसके दो अन्य नुस्ख़े देखे हैं, एक बोडलियन लाइब्रेरी, ऑक्सफ़ोर्ड में और दूसरी बाबा-ए-उर्दू मौलवी अब्दुल हक़, औरंगाबाद की लाइब्रेरी में, लेकिन उनमें से कोई भी संतोषजनक रूप से स्पष्ट नहीं है।(8) हालांकि, पेरिस में मौजूद नुस्ख़े की वह प्रति जिसे डॉ.

सैयद अब्दुल्ला ने ओरिएंटल कॉलेज मैगज़ीन, मई 1937 में प्रकाशित किया था, इस लेख के साथ शामिल है।

पर्सी ब्राउन ने अपनी किताब Indian Painting Under the Mughals में इस एलबम का परिचय दिया है। पर्सी ब्राउन इससे कुछ अति महत्वपूर्ण नतीजों पर पहुंचे हैं। उदाहरण के लिए, इसमें लिखा है कि मुहम्मद दारा शुकोह एक कैथोलिक ईसाई थे। तर्क यह दिया जाता है कि उन्होंने इस एलबम में कई ईसाई लोगों की तस्वीरें भी शामिल की हैं और उन्होंने 'सेंट कैथरीन ऑफ़ सीना' की तस्वीर भी शामिल की है। उनका लेख है:

> That he was catholic in his views is also proved by the presence of several European engravings among its pages, one of which (fol. 43) depicts St. Catherine of Siena' and bears its own date of 1585.(9)

पर्सी ब्राउन ने दारा शुकोह को ईसाई साबित करने के लिए जो तर्क दिया है, उस तर्क से तो सारा यूरोप मुसलमान साबित हो जाएगा। क्योंकि अगर मुहम्मद दारा शुकोह अपने एलबम में पादरी की तस्वीर रखने से ईसाई बन सकते हैं तो यूरोपीय संग्रहालयों में मुसलमानों की तस्वीरें रखी हुई हैं। यद्यपि दारा शुकोह के इस एलबम में अधिकांश चित्र मुसलमानों के हैं, पर्सी ब्राउन ने उनसे कुछ भी साबित नहीं किया। इसके अलावा यह भी उल्लेखनीय है कि दारा शुकोह ने अपने किसी भी लेख में ईसाई धर्म के बारे में एक भी सकारात्मक शब्द नहीं लिखा है। दारा शुकोह बेशक सभी धर्मों का सम्मान करते थे, जिसमें ईसाई धर्म भी शामिल है। एक-दो बार चर्च जाने का भी ज़िक्र मिलता है, लेकिन उन्होंने ईसाई धर्म के बारे में कुछ नहीं लिखा है। इसके विपरीत, उन्होंने हिंदू धर्म की प्रशंसा की है, उसके बारे में लिखा है और न केवल हिंदू तपस्वियों की तस्वीरें रखते थे, बल्कि उनकी कुटियाओं में वह जाकर रहे भी थे। ये सारी बातें उनकी उदारता साबित करती हैं, लेकिन उनके

हिंदू या ईसाई होने को साबित नहीं करतीं। पश्चिमी लोग ऐसी बेतुकी बातें उठाकर बेवजह समस्या खड़े करते हैं।

इसी तरह इस एलबम की तस्वीरों से एक निष्कर्ष यह निकाला जा सकता है कि चूंकि यह एलबम एक औरत को दिया जाना था, इसलिए दारा शुकोह ने इसमें ज़्यादातर औरतों की तस्वीरें शामिल कीं हैं:

> Although on the other hand they may have been chosen for the femininity of their character, as the volume formed a present to a Lady.(10)

लेकिन जैसा कि डॉ. सैयद अब्दुल्ला के लेख से स्पष्ट है, इसमें अधिकांश चित्र पुरुषों के हैं। इसलिए, यह कहा जा सकता है कि पर्सी ब्राउन की आलोचना मुग़लों से नफ़रत के अलावा और कुछ भी नहीं थी।

पर्सी ब्राउन ने इस एलबम की अधिक प्रशंसा नहीं की है। इसके महत्त्व को पूरी तरह से स्वीकार नहीं किया है, लेकिन विद्वानों में से कुछ लोग इस असाधारण एलबम के ऐतिहासिक और कलात्मक महत्व को समझते हैं। डॉ. सैयद अब्दुल्ला ने इसके बारे में लिखा है:

> “यह बेशक़ीमती ख़ज़ाना, मुग़लकालीन चित्रकला का एक उत्कृष्ट उदाहरण, यहां मौजूद है।”(11)

यूरोप में भी न्यायप्रिय लोग हैं, उदाहरण के लिए, सेसिल एल. बर्न्स (Cecil L. Burns) ने 1925 में टाइम्स ऑफ इंडिया में लिखा था:(12)

“What the Koh-i-Noor is to other eastern diamonds, surely this richly bound volume in wrought leather, containing miniatures by Persian, Central Asian and Mughal artists, and specimens of Calligraphy of the highest quality of the penman's and painter's art, must be to any other volume of a similar character... The album is similar to such a one as Vasaris, the great biographer of the Renaissance in Italy, prepared of the drawings of the artists of that period. ......All are of the highest quality of the schools represented, and

afford a striking testimony to the knowledge and taste of the prince who selected them."

अर्थात्, अन्य पूर्वी हीरों के सामने जो अहमियत कोहिनूर की है, वही अहमियत इस एलबम की है। इस एलबम में ईरानी, मध्य एशियाई और मुग़ल कलाकारों द्वारा की गई चित्रकला और सुलेख के अद्वितीय उदाहरण मौजूद हैं... ये सभी बहुत उच्च गुणवत्ता वाले उदाहरण हैं और उन्हें एकत्र करने वाले शहज़ादे के ज्ञान और रुचि के प्रमाण हैं।(सारांश)

दारा शुकोह के एलबम की ग़ैर मामूली ऐतिहासिक अहमियत है। इस एलबम की रचना एक शहज़ादे ने की थी, जिसे उन्होंने अपनी बीवी के लिए रचा और उसे भेंट किया और बाद में औरंगज़ेब ने इसे अपने पुस्तकालय में सजाया। इसके ऐतिहासिक महत्त्व के प्रमाण मौजूद हैं और इसमें मौजूद सामग्री का महत्त्व अभी भी चर्चा का विषय बना हुआ है। पर्सी ब्राउन के लेख से कोई मानक निर्धारित नहीं किया जा सकता। पर्सी ब्राउन ने इसमें से फूलों की एक तस्वीर भी कॉपी की है, लेकिन ऐतिहासिक महत्त्व की कोई तस्वीर कॉपी नहीं की है।

जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, दारा शुकोह ने इस कार्य के लिए एक भूमिका भी लिखी थी, जिसे पहली बार डॉ. सैयद अब्दुल्ला चुगताई ने मई 1937 में लाहौर के ओरिएंटल कॉलेज मैगज़ीन में प्रकाशित किया था। यह नुस्ख़ा त्रुटियों से मुक्त नहीं है। मूल नुस्ख़ा पेरिस में है। इसके विश्वसनीय प्रकाशन के बारे में अभी तक कोई जानकारी नहीं मिली है, इसलिए यह संक्षिप्त परिचय पर्याप्त है।

संदर्भः

1. Indian Painting Under the Mughals by Percy Brwon, Cosmo Publications, New Delhi 1987 P.95
2. अब्दुल्ला चुग़ताई डॉ., सैयद: मार्का दारा शुकोह और उनका मामला, शामिल, ओरिएंटल कॉलेज मैगज़ीन, लाहौर, मई 1937
3. As above
4. As above
5. डॉ. मौलवी मुहम्मद शफ़ी: मार्का दारा शुकोह, शामिल, ओरिएंटल कॉलेज मैगज़ीन, लाहौर, फरवरी 1955
6. As above
7. Percy Brown, P.24
8. ओरिएंटल कॉलेज मैगज़ीन लाहौर
9. As above Percy Brown, P.95
10. As above
11. ओरिएंटल कॉलेज मैगज़ीन लाहौर
12. Majma-ul-Bahrain: Text and Translation by Prof. M. Mahfuz-ul-Haq, Calcutta, 1929 P.22

मुकालमा (वार्ता) बा-फ़तेह अली क़लंदर

दारा शुकोह ने सफ़र-ए-सुलूक के दौरान कई विद्वानों और साथियों से सवाल पूछे और इसको समझने की कोशिश की। इसी सिलसिले में वे बाबा लाल बैरागी और हज़रत शाह फ़तेह क़लंदर की ख़िदमत में हाज़िर हुए और उनसे सुलूक के रास्ते की कठिनाइयों के बारे में सवाल पूछे। फिर उन्होंने इन सवालों और उनके जवाबों को एक किताब के रूप में संकलित किया। हालाँकि यह एक छोटी किताब है, लेकिन इसका अर्थ बहुत गहरा है और इसमें सुलूक की कई कठिन समस्याओं का समाधान किया गया है। दारा शुकोह द्वारा लिखित इस किताब का एक नुस्ख़ा (ग्रंथ आदि की प्रति) मीर ज़ामिन अली लाइब्रेरी, शाहगंज, आगरा में उपलब्ध है। इस नुस्ख़े से डॉ. तारा चंद और प्रोफ़ेसर अमीर हसन आबिदी ने इस नुस्ख़े को जोगबशिष्ट के फ़ारसी संस्करण की भूमिका के अंदर शामिल किया है।

यह नुस्ख़ा सूफ़ीवाद और नैतिकता की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। यह नुस्ख़ा अभी भी फ़ारसी में है, यानी इसका अभी तक अनुवाद नहीं हुआ है। जोगबशिष्ठ की भूमिका से पहले यह कहीं प्रकाशित नहीं हुई थी इसलिए इसके महत्त्व और उपयोगिता को देखते हुए इसे यहां प्रकाशित किया जा रहा है और इसका अनुवाद भी पहली बार प्रकाशित किया जा रहा है।

हज़रत शाह फ़तेह क़लंदर ख़ुदा की याद में डूबे सूफ़ियों में से एक थे। हालाँकि उनके बारे में कोई विस्तृत जानकारी नहीं मिलती। जैसा कि इसके हस्तलिखित लेखों से मालूम होता है, वे हज़रत शाह मुही क़लंदर लाहौर के ख़लीफ़ा (उत्तराधिकारी) थे। तज़किरा-ए-सुब्ह-ए-सादिक़ के लेखक ने हज़रत शाह फ़तेह क़लंदर और उनके पीर के बारे में बहुत कुछ लिखा है। वे और उनके पीर शाह मुही क़लंदर दोनों ही जौनपुर के महान सूफ़ियों में से हैं और मेरे दोस्तों

में से हैं। (मुहम्मद सादिक़ सादिकी: तज़किरा-ए-सुब्ह-ए-सादिक़, मख़्तूता, संग्रह, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी; जोगबशिष्ठ, डॉ. तारा चंद और प्रोफ़ेसर अमीर हसन आबिदी के प्रयासों से, अलीगढ़ 1968,)

मुकालमा बा-फ़तेह अली क़लंदर (रह.)
(हिंदी अनुवाद)

(हज़रत फ़तेह अली क़लंदर (रह.) के अल्फ़ाज़ बहुत ही विद्वत्तापूर्ण और तल्लीनता में डूबे हुए हैं। उनके अर्थ को यथासंभव शब्दों के क़रीब रहते हुए उर्दू ज़बान में व्यक्त करने का प्रयास किया गया है। यदि कोई ग़लती रह जाए तो माफ़ी की दरख़्वास्त है।)

दारा शुकोह का पहला प्रश्न: इस मार्ग अर्थात् राह-ए-सुलूक का आरंभ और अंत क्या है?

हज़रत शाह फ़तेह क़लंदर (रह.) का जवाब: इस मार्ग अर्थात् राहे-सुलूक का आरंभ और अंत क्या है? मजज़ूब शिराज़ी ने क्या ख़ूब फ़रमाया है:
यह रास्ता कहां ख़त्म हो सकता है?
क्योंकि शुरू से ही सैंकड़ों हज़ार मंज़िलें सामने हैं।

दारा शुकोह का दूसरा प्रश्न: इसका क्या मतलब है कि सैयदुत-ताईफ़ा ने इंतिहा कहा है, के जवाब में कहा कि वह आरंभ की ओर लौटना है?

हज़रत शाह फ़तेह क़लंदर (रह.) का जवाब: अर्थात् जब साधक तल्लीनता की अवस्था में होते हैं तो वे अस्पष्ट बोलते हैं, लेकिन लोगों से उनकी बुद्धि के अनुसार ही बात करनी चाहिए। जैसा कि भारतीय संत ने कहा है:

कबिरा बलि जाए वा परख के जो मन ही महजिद जाए

दारा शुकोह का तीसरा सवाल: वह कौन सा ज्ञान है जिसे सबसे बड़ा हिजाब कहा जाता है?

हज़रत शाह फ़तेह क़लंदर (रह.) का जवाब: ख़ुदा का ज्ञान अर्थात् ख़ुदा को जानना:

सत्य का ज्ञान सूफ़ी के ज्ञान में गुम हो जाता है लेकिन लोग इस पर कैसे यक़ीन कर सकते हैं?

दारा शुकोह का चौथा प्रश्न: क्या पूर्ववर्ती नबियों और पैग़म्बरों (ईश्वर के दूत) को एकेश्वरवाद के बारे में पता था या नहीं?

हज़रत शाह फ़तेह क़लंदर (रह.) का जवाब: उन्हें एकेश्वरवाद का ज्ञान था। यह अल्लाह की कृपा है, जिसे वह जिसे चाहता है प्रदान करता है।

दारा शुकोह का पांचवां प्रश्न: राह-ए-बातिन (रूहानियत) के विकास का कोई अंत है या नहीं?

हज़रत शाह फतेह क़लंदर (रह.) का जवाब: जहां तक आत्म-साक्षात्कार का सवाल है, यह व्यक्ति के एतबार से उसकी इंतिहा होती है। इसलिए इस मार्ग में इंतिहा का मतलब है आशिक़ के दिल का इत्मिनान, सालिक (साधक) का इत्मिनान ही इस राह की इंतिहा है। हालाँकि इसे हासिल करने की इच्छा का कोई इंतिहा नहीं है।

दारा शुकोह का छठा प्रश्न: क्या "ज़लूमा जहूला" किसी व्यक्ति की निंदा है या प्रशंसा?

हज़रत शाह फ़तेह क़लंदर (रह.) का जवाब: हालाँकि इन शब्दों का बाहरी रूप इंसान की बुराई मालूम होती है लेकिन अगर कोई इन्हें अल्लाह की रोशनी और अंदरूनी नज़र से देखे तो उसे इनमें इंसान की पूर्णता के अलावा और कुछ नहीं दिखाई देता कि उसने अपनी पूर्णता से अपना हाथ खींच लिया है और ख़ुद को ही ख़ुद से भुला दिया है। इसलिए हम कह सकते हैं कि यह बुराई की आड़ में प्रशंसा है।

इस अमानतदार का हाल कितना अजीब है, देखो
चोर जंगल में है और भाई घर में

दारा शुकोह का सातवां प्रश्न: विद्यमान चीज़ों का विलुप्त हो जाना असंभव है। तो फिर मौजूदा चीज़ों को विलुप्त कैसे कहा जा सकता है?

हज़रत फ़तेह क़लंदर (रह.) का जवाब: हालाँकि चीज़ों का विलुप्त हो जाना नामुमकिन है तो फिर मौजूदा चीज़ों को विलुप्त कैसे कहा जा सकता है? जो मौजूद है, वह मौजूद है और जो विलुप्त है, वह विलुप्त है। जो समझ गया सो समझ गया।

दारा शुकोह का आठवां प्रश्न: क्या तसव्वुर (कल्पना) का कोई एतबार है?

हज़रत फ़तेह क़लंदर (रह.) का जवाब: वह तसव्वुर जो अपने विषय के अवलोकन की पुष्टि है, अपनी वास्तविकता के लिहाज़ से एतबार है।

दारा शुकोह का नौवां सवाल: वह कौन सा काम है जो शाग़िल (ईश्वर की याद में रहने वाला) को उसके इख़्तियार (वश) के बिना दिया जाता है?

हज़रत फ़तेह क़लंदर (रह.) का जवाब: कोई भी काम जो शाग़िल के इख़्तियार के बिना किया जाता है, वह मुर्शिद के फ़रमान के अधीन है, क्योंकि हर काम में इख़्तियार की इंतिहा वास्तव में बेइख़्तियारी ही है।

दारा शुकोह का दसवां सवाल: बे-वसवसे की नमाज़ कब होती है?

हज़रत शाह फ़तेह क़लंदर (रह.) का जवाब: जब वसवसे (बुरे ख़्याल) का डर न हो।

दारा शुकोह का ग्यारहवां प्रश्न: क्या ब्रह्मज्ञान मनुष्य के भीतर एकसमान है या नहीं?

हज़रत शाह फ़तेह क़लंदर (रह.) का जवाब: एकसमान होती है और इसके उभरने में कोई बाधा नहीं है।

दारा शुकोह का बारहवां प्रश्न: क्या रूह की तर्बियत (आत्मा के प्रशिक्षण) से ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया जा सकता है या नहीं?

हज़रत शाह फ़तेह क़लंदर (रह.) का जवाब: अगर शिष्य में पूर्ण क्षमता है, तो उसकी तर्बियत के ज़रिए पूर्ण ज्ञान हासिल किया जा सकता है। इस तरह, इस दरवेश (हज़रत फ़तेह क़लंदर) ने जो आनंद, स्वाद और जुनून का अनुभव किया, उस स्वाद की प्रेरणा और प्रशंसा, राह-ए-कमाल के माध्यम से पूर्णता की हर रूह-ए-कमाल में देखी गई।

दारा शुकोह का तेरहवां प्रश्न: असीम अर्थात् अनंत को हृदय में कैसे समाहित किया जा सकता है?

हज़रत शाह फ़तेह क़लंदर (रह.) का जवाब: असीम यानी अनंत को हृदय में कैसे समाया जा सकता है?

यहां समाधान और एकता असंभव है।

यह अपने आप में एकता के संदर्भ में एक गुमराह करने वाली बात है।

दारा शुकोह का चौदहवाँ प्रश्न: साधक को फ़ना हासिल होती है या नहीं?

हज़रत शाह फतेह क़लंदर (रह.) का उत्तर: साधक को अपनी इच्छित वस्तु के साथ फ़ना हासिल हो जाती है।

दारा शुकोह का पंद्रहवां प्रश्न: क्या साधक को मौत के बाद वस्ल (मिलन) मुमकिन है या नहीं?

हज़रत शाह फ़तेह क़लंदर (रह.) का जवाब: अज्ञानी साधक को वस्ल नहीं हो सकता। इसकी दलील यह है कि “मौत वह रास्ता है जो हबीब (प्रियतम) को हबीब से मिलाता है।”

ऐसी मौत नहीं चाहिए कि इंसान क़ब्र में चला जाए।

मौत एक ऐसी तब्दीली होनी चाहिए कि इंसान नूर (प्रकाश) में जाए।

यह एक अवलोकन है।

दारा शुकोह का सोलहवां सवाल: दर्द और इश्क़ में क्या फ़र्क़ है?

हज़रत शाह फ़तेह क़लंदर (रह.) का जवाब: इश्क़ ख़ास है और दर्द आम है।

हज़रत शाह फ़तेह क़लंदर जौनपुरी, ख़लीफ़ा हज़रत शाह मुही क़लंदर लहरपुरी की ख़िदमत में दारा शुकोह के सवाल और हज़रत के जवाब।

संदर्भ:

1. दारा शुकोह: सफ़ीनतुल-औलिया, नवल किशोर प्रेस, 1882, 1900
2. सफ़ीनतुल-औलिया, उर्दू अनुवाद, मुहम्मद वारिस कामिल, साबरी बुक डिपो, देवबंद
3. सकीनतुल औलिया, उर्दू अनुवाद प्रोफ़ेसर मकबूल बेग बदख्शानी, फ़रीद बुक डिपो, दिल्ली, 1999
4. हक़नामा, मशमूला, दारा शुकोह की चुनी हुई कृतियाँ, सैयद मुहम्मद रजा जलाली नैनी द्वारा संपादित और व्यवस्थित, प्रकाशित 1335
5. हसनातुल-आरिफ़ीन, सुधार और टिप्पणी के साथ, सैय्यद मखदूम रहबन, तेहरान, 1352
6. मजमउल-बहरैन, प्रोफ़ेसर महफूज़ुल-हक़ द्वारा अंग्रेज़ी अनुवाद के साथ फ़ारसी लेख, कलकत्ता, 1929
7. मजमउल-बहरैन, उर्दू अनुवाद, तल्हा रिज़वी बर्क, NCPUL -2019
8. मजमउल-बहरैन, उर्दू अनुवाद, प्रोफ़ेसर मुहम्मद युनुस शाह गिलानी, एबटाबाद, 1983
9. मजमउल-बहरैन हिंदी अनुवाद जगन्नाथ पाठक, राका प्रकाशन, इलाहाबाद, 2005, मुक़द्दमा (भूमिका)
10. सिर्रे अकबर, चयन, बिक्रमाजीत हसरत, दारा शुकोह लाइफ एंड वर्क, कलकत्ता, 1953
11. दीवान, तक़दीम अहमद नबी खान, रिसर्च सोसाइटी ऑफ पाकिस्तान, लाहौर, 1969
12. मुन्तख़ब आसार-ए-दारा शुकोह, सैयद मुहम्मद रजा जलाली नायनी द्वारा संपादित और व्यवस्थित, 1335 में प्रकाशित
13. मुहम्मद अफ़ज़ल सरख़ुश: कलिमात-ए-शोअरा, सादिक़ अली दिलावरी, लाहौर
14. मुफ़्ती गुलाम सरवर लाहौरी: ख़ज़ीनतुल-अस्फ़िया, इक़बाल अहमद फ़ारूक़ी द्वारा अनुवादित व व्यवस्थित, मकतबा नबविया, लाहौर, 2001
15. जोग बशिष्ट, शोध, डॉ. ताराचंद और सैयद अमीर हसन आबिदी, दानिशगाहे-इस्लामी, अलीगढ़, 1968

16. अब्दुल हमीद लाहौरी: पादशाहनामा, मेजर डब्ल्यू. एन. लीज़ की देखरेख में, कलकत्ता, 1868, खंड II, पेज 717
17. मुहम्मद सॉलेह कंबोह: अमले सॉलेह अल-मौसूम बी शाहजहाँनामा, डॉ. गुलाम यज़दानी द्वारा संपादित और फुटनोट, डॉ. वहीद कुरैशी द्वारा संपादित और तसहीह, मजलिसे तरक़्क़ी-ए-अदब लाहौर, दूसरा संस्करण, 1968
18. सैयद नजीब अशरफ नदवी: रुक़्क़आत-ए-आलमगीरी, दारुल मुसन्नफीन, आजमगढ़
19. सैयद सबाहुद्दीन अब्दुर्रहमान: बज़्म-ए-तैमूरिया, जिल्द 3, दारुल मुसन्निफ़ीन आज़मगढ़, द्वितीय संस्करण, 1981
20. सैयद मुहम्मद इस्लाम शाह: दारा शुकोह के मज़हबी अक़ाइद, संग-ए-मील पब्लिकेशन्स, लाहौर, 1968
21. मियां मुहम्मद दीन कलीम क़ादरी: तज़किरा हज़रत मियां मीर, ज़ियाउल-क़ुरान पब्लिकेशन, लाहौर, मुद्रित 1986
22. आफ़ताब राय लखनवी: तज़किरा रियाज़ुल-आरिफ़ीन, सैयद हिसामुद्दीन राशिदी द्वारा संपादित, फ़ारसी रिसर्च सेंटर, ईरान और पाकिस्तान, 1982
23. महमूद अली: दारा शुकोह, दिल्ली प्रेस, 1999
24. अब्दुल्ला चुगताई डॉ., सैयद: मुरक़्क़ा दारा शुकोह और उसका मुक़द्दमा, शामिल, ओरिएंटल कॉलेज मैगज़ीन, लाहौर, मई 1937
25. Supriya Ghandhi: The Emperor Who Never Was: Dara Shukoh in Mughal India, London,2020
26. Bikrama Jit Hasrat: Dara Shikuh: Life and Works, Calcutta,1953
27. Percy Brown: Indian Painting Under the Mughals, Cosmo Publications, Delhi,1987, P.95
28. Hermann Ethe; Edward Edwards, Catalogue of Persian manuscripts in the library of the India Office

ख़ुसरो फ़ाउण्डेशन: एक नई पहल

हिंदुस्तान जन्नत निशान, जो मज़हबी, भाषायी एवं सांस्कृतिक विविधताओं का देश है और 'अनेकता में एकता' से जिसकी पहचान होती है। इस महान देश का इतिहास मानव-प्रेम की मिसालों से भरा पड़ा है। जिसमें शक्ति और शान्ति भक्तों के गीतों का नतीजा है और हिंदुस्तान हमेशा इस बात का गवाह रहा है कि धरती के बासियों की मुक्ती प्रीत में है।

पता नहीं दुनिया को किसकी बुरी नज़र लग गई कि सामाजिक निकटता दूरियों में बदलने लगी हैं। सच्चाई तो यही है कि इस देश की अधिकांश लोग आज भी इस अलगाव तथा विभाजन का हिस्सा बनने के लिए तैयार नहीं है, परन्तु बहुसंख्यक अगर ख़ामोश रहती है तो उसका अस्तित्व गहरे अन्धकार के गर्त में समा जाता है। वर्तमान में अधिकांश लोग समाज एवं मानवता के दुखों का निवारण करने के बजाय केवल और केवल अपने आप में व्यस्त हैं। वह मनुष्य जो कभी जनसाधारण की आकांक्षाओं का स्वर हुआ करता था आज अपने आप तक ही सीमित होकर रह गया है। इन हालात में हाथ में हाथ धरे बैठा नहीं रहा जा सकता और इसलिए ज़रूरी है कि एक बार उन सभी प्रतीकों को फिर से ज़िंदा किया जाए जो 'मुहब्बतों की गाथा' और 'प्रेम के ढाई अक्षर' से एक दूसरे को जोड़े रहे जिनके नज़दीक मादरे-वतन, यहाँ पैदा और बसने वाले, इसके दरियाओं का पानी पीने वाले, इसके खेतों में पैदा होने वाले अन्न से अपनी भूख मिटाने वालों को फिर इस बात का एहसास दिलाया जाए कि उनका मज़हब, ज़बान और इलाक़ा कुछ भी हो सकता है लेकिन माँ और माटी से उनका रिश्ता इस दुनिया के पैदा करने वाले और चलाने वाले रब की मर्ज़ी का नतीजा है और जिसमें रब राज़ी उसमें सब राज़ी रहें तो ही बेहतरी और भलाई है।

हिंदुस्तान में एक दूसरे को जोड़ने वालों का यदि उल्लेख किया जाए तो उनके नाम और काम गिनाने में कोई देर न लगेगी लेकिन अगर एक दूसरे को एक दूसरे से अलग करने वालों और बाँटने वालों के नाम पूछे जाएँ तो उसे उनके नाम याद करने और बताने में बड़ी मुश्किल आएगी।

इन सबके बावजूद आज फिर यह दूरियाँ, यह टकराव और हिंसा बार-बार क्यों देखने को मिल रही है। इसका सीधा-साधा जवाब यही है कि हमने उन्हें भुला दिया है जिन्हें हमें याद रखना चाहिए था। देवी-देवताओं, पैग़ंबरों, पीरों और ऋषियों-मुनियों के त्याग, तपस्या, समर्पण और सेवाभाव को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है। उनकी शिक्षाओं तथा उनके उपदेशों को एक बार फिर लोगों तक पहुँचाया जाना चाहिए।

यही वह सोच और फ़िक्रमंदी है जिसके तहत 'ख़ुसरो फ़ाउण्डेशन' की स्थापना की गई है। हज़रत अमीर ख़ुसरो मध्यकालीन भारत के एक ऐसे लोकप्रिय, मनमोहक एवं सर्वव्यापी व्यक्तित्व हैं, जिन्हें सदियाँ गुजरने के बाद भी याद रखा गया और हमेशा याद रखा जाएगा। वह सूफ़ी भी थे और सिपाही भी, कवि भी थे और संगीतकार भी, इतिहासकार भी थे और इतिहास बनाने वाले भी। उनके व्यक्तित्व की सार्वभौमिकता और विशिष्टता ने उन्हें न केवल विभिन्न गुणों का वाहक बनाया था बल्कि बहुआयामी विशेषताओं से परिपूर्ण किया था। मध्यकालीन भारतीय इतिहास के बड़े-बड़े नामियों के निशान मिट गए लेकिन हज़रत अमीर ख़ुसरो आज भी न सिर्फ़ हमारी तारीख़ का एक हिस्सा हैं बल्कि हर इंसान के दिल व दिमाग़ में रचे बसे हैं। वे लोगों के दिलों में इस प्रकार रचे-बसे हैं कि ख़ुशी के लम्हे हों या दुख के पल, हज़रत अमीर ख़ुसरो का नाम तथा उनकी रचनाएँ सदैव अपनी प्रासंगिकता के साथ हमारे साथ हैं।

इस गुत्थी को तो मनोवैज्ञानिक ही सुलझा सकते हैं कि हज़रत अमीर ख़ुसरो ने अपनी विभिन्न दरबारी एवं ख़ानक़ाही गतिविधियों के बीच किस प्रकार संतुलन स्थापित किया। यह प्रश्न इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि ख़ुसरो ने यह संतुलन अपने व्यक्तित्व के खरेपन के साथ स्थापित किया था। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उनका

हर जुड़ाव और हर किरदार खुली किताब की तरह सब पर ज़ाहिर था और इस खुलेपन के बावजूद ज़िंदगी भर कामयाब रहे। सच्चाई से भरपूर चिंतन, अमीर ख़ुसरो के व्यक्तित्व को हमारे समक्ष एक आदर्श के रूप में प्रस्तुत करता है।

इस भारतीय तुर्क का देश-प्रेम न केवल मिसाली है, बल्कि क़ाबिले-रश्क भी है। ख़ुसरो के नज़दीक भारत की धरती अदन की जन्नत है। यहाँ के लोग प्रत्येक रंग व रूप में उन्हें प्रिय है। यहाँ के दरबारों के समक्ष ईरान, तूरान और ख़ुरासान के दरबार फीके दिखाई देते हैं। यहाँ के लोग कृषि, उद्योग, व्यापार के साथ-साथ विज्ञान एवं कला के प्रत्येक क्षेत्र और सैन्य प्रशिक्षण के प्रत्येक रूप में अद्भुत एवं अनूठे हैं। एक पक्का मुसलमान होने के बावजूद भी उन्हें भारत की सभी विचारधाराएँ प्रिय हैं। वे कहते हैं कि "यद्यपि भारतवासी हमारे जैसा धर्म नहीं रखते, परन्तु उनकी अधिकतर मान्यताएं हमारे जैसी हैं।"

आज ज़रूरत इस बात की है कि हम भारतवासी, भारत की प्रत्येक परंपरा को, चाहे वह धार्मिक हो अथवा सांस्कृतिक अथवा भाषायी, शैक्षिक हो या साहित्यिक, उसे हज़रत अमीर ख़ुसरो की तरह देखें, अपनाएं और उसके लिए अपने आप को समर्पित कर दें। हज़रत अमीर ख़ुसरो, जिनकी माँ भारतीय थीं और पिता तुर्क, एक ऐसे भारतीय हैं जो न केवल भारत की महानता के गीत गाते हैं बल्कि अपने आपको इस मिट्टी का इस प्रकार अभिन्न अंग बनाना चाहते हैं जैसे यह मिट्टी ही सब कुछ हो। देश की मिट्टी से इस लगाव और प्रेम को अल्ताफ़ हुसैन हाली ने इस तरह बयान किया है:

तेरी इक मुश्त-ए-ख़ाक के बदले
लूँ न हर्गिज़ अगर बहिश्त मिले

खुसरो फ़ाउण्डेशन देशभक्ति, मानव प्रेम तथा प्रकृति से निकटता को अपनाने और सभी प्रकार के भेदभाव और नफ़रत से ऊपर उठकर मुहब्बत को आम करना चाहती है। जिसको शैख़ इब्राहीम ज़ौक़ ने यूँ बयान किया है:

गुल्हाए-रंगा-रंग से है ज़ीनत-ए-चमन
ऐ 'ज़ौक़' इस जहाँ को है ज़ेब इख़्तेलाफ़ से